राष्ट्रहित ! उद्योगहित !! मजदूरहित !!!

श्रमिक स्मारिका......

राष्ट्रीय श्रम दिवस–"विश्वकर्मा जयन्ती"

17 सितम्बर, 1984

भारतीय मजदूर संघ, बिहार-प्रदेश

राष्ट्रहित ! उद्योगहित !! मजदूरहित !!!

श्रमिक स्मारिका

"राष्ट्रीय श्रम-दिवस : विश्वकर्मा जयन्ती"

१७ सितम्बर, १९८४

भारतीय मजदूर संघ, बिहार प्रदेश

प्रकाशक

सुरेश प्रसाद सिन्हा

सम्पादक

लक्ष्मीनारायण केसरी

श्रमिक-गीत

मानवता के लिए उषा की किरण जगाने वाले हम।
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का भाग्य बनाने वाले
हम ॥ध्रु॥

हम अपने श्रम-सीकर से उसर में स्वर्ग उगा देंगे।
कंकर - पत्थर समतल कर कांटों में फूल उगा देंगे ॥
सतत परिश्रम से अपने हैं वैभव लाने वाले हम।
शोषित, पीड़ित दलित जनों का भाग्य बनाने वाले
हम ॥

अन्य किसी के मुँह की रोटी, हरना अपना काम नहीं।
पर अपने अधिकार गँवाकर कर सकते आराम नहीं ॥
अपने हित औरों के हित का, मेल मिलाने वाले हम।
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का भाग्य बनाने वाले
हम ॥

रोटी, कपड़ा, मकान, शिक्षा आवश्यकता जीवन की।
व्यक्ति और परिवार सुखी हों, तभी मुक्ति होती सच्ची ॥
हँसते - हँसते राष्ट्रकार्य में शक्ति लगाने वाले हम।
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का भाग्य बनाने वाले
हम ॥

भारत माता का सुख-गौरव, प्राणों से भी प्यारा है।
युग-युग से मानव-हित करना, शाश्वत धर्म हमारा है ॥
जीवन शक्ति उसी माता को, भेंट चढ़ाने वाले हम।
शोषित, पीड़ित, दलित जनों का भाग्य बनाने वाले
हम ॥

राधानन्दन झा
अध्यक्ष
बिहार विधान-सभा

सं०–२०५९

पटना
१२ जुलाई, १९८४

शुभकामना-सन्देश

मुझे यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि भारतीय मजदूर संघ, बिहार प्रदेश के तत्वावधान में दिनांक १७ सितम्बर,१९८४ को श्रम-दिवस विश्वकर्मा जयन्ती के अवसर पर श्रमिक स्मारिका का प्रकाशन होने जा रहा है। किसी भी राष्ट्र का सम्यक विकास विशेषकर आर्थिक संतुलन बनाये रखने में श्रम का स्थान सर्वोपरि है और इसे अंगिकार कर इसे आदर किया जाना चाहिए। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह स्मारिका श्रमिक क्षेत्र के लिए लाभकारी तथा अर्थशास्त्रियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी। मैं स्मारिका प्रकाशन की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ।

राधानन्दन झा

BSIDC

A Govt. Corporation with a Difference

OUR OBJECTIVES :

- to promote and operate schemes for industrial development of Bihar.
- to aid, assist and finance, industrial undertakings in the medium and large scale sectors.
- to enter into financial collaborations for joint workings of industrial undertaking.

FORTHCOMING PROJECTS

Projects Commissioned during the last year.

1. Bihar Caustic & Chemicals Ltd.
   Garhwa Road, Palamu.
2. Vaishali Woollen & Textiles Mills,
   Hajipur, Vaishali.
3. Shri Durga Cement Company Ltd.,
   Ramgarh.

Project nearing completion.

1. Bihar Fasteners Ltd., Gaya.
2. Bihar Solvent and Chemicals Ltd.,
   Latehar, Palamu.

Rehabilitation of Sick Units in Progress.

1. Kumardhubi Metal Casting & Engineering Ltd.
   (Erst while Kumardhubi Engineering Works, Dhanbad.)
2. Magadh Spun Pipes Ltd.
   (Erst while Gayday Iron & Steel Co., Hirodih Kodarma)

Projects under Implementation.

1. Bihar Sponge Iron, Chandil, Singhbhum.
2. Nylon-6 Filament Yarn, Bhojpur.
3. Progressive Cement, Patratu.
4. Mayur Lime Ltd., Patratu.
5. Transmission Towers, Jaisidih.
6. Paper Mills, Baijnathpur, Saharsa.
7. Watch Assembly Unit, Ranchi.
8. Ball Bearing Project, Monghyr.
9. 7 Lakh MTA Cement Project at Yadunathpur-Bhavnathpur.
10. 40,000 MTA GI Sheet Project, Jamui.

At BSIDC today we plan for regional and balanced growth for Industrially advanced state of tomorrow.

Bihar State Industrial Development Corporation

BANDAR BAGICHA, PATNA-800 001.

Gram : INDUSTRIAL. Telex : 022-315, Phone : 24071

स्व० नरेश चन्द्र गांगुली

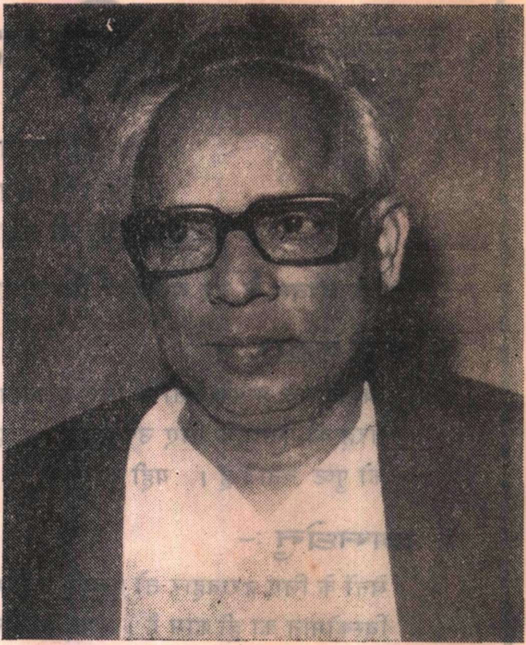

जो भुलाये न गये !

स्व० नरेश दा का जन्म ६ जनवरी, १६२२ को बिहार के भागलपुर में हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय से एम० ए० करने के बाद उन्होंने दक्षिणी-पूर्वी रेलवे में नौकरी की। परन्तु, नरेश दा को सरकारी सेवा में प्रतिभा का ह्रास अच्छा नहीं लगा और वकालत पास कर कलकत्ता उच्च न्यायालय में १६५२ में वकालत शुरू कर दी।

छात्र जीवन में ये उच्चकोटि के वक्ता और बुराइयों के विरुद्ध जुझारू स्वभाव के थे। इसी का प्रतिफल है कि उन्हें अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद का सचिव चुन लिया गया। १६४४ में ये हिन्दू छात्र परिषद के प्रदेश-सचिव चुने गये।

१६५२ में डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी के निकट संपर्क में आये तथा उन्हें भारतीय जनसंघ का प्रदेश सचिव निर्विरोध चुना गया। श्यामा प्रसाद मुखर्जी के साथ उन्होंने भारत में कश्मीर के विलयन १६५३ आंदोलन में भाग लिया एवं उन्हें जेल की सजा भुगतनी पड़ी। १६६२ में इन्हें भारतीय मजदूर संघ, पश्चिम बंगाल का अध्यक्ष बनाया गया। इसके पूर्व ये डाक-तार कर्मचारी संगठनों के भी प्रधान थे। वर्ष १६७५ के अमृतसर में हुए भारतीय मजदूर संघ के अ० भा० सम्मेलन में अध्यक्ष पद सम्भाला। इस पद पर ये ६ जनवरी, '८४ तक बने रहे।

आपात् काल में नरेश दा को मीसा में बंद किया गया। इसके बावजूद वे अनेक सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक संगठनों से जुड़े थे। वे राष्ट्रीय अधिवक्ता मंच के अध्यक्ष तथा पीपुल्स युनियन ऑफ सिविल लिबरटीज के उपाध्यक्ष थे।

सौम्यता, मृदुभाषा तथा उपेक्षित वर्ग के प्रति सतत् सेवा-भाव उनके जीवन का लक्ष्य था जिसका परिणाम था कि उन्हें जीवन के हर क्षेत्र में अनन्य प्रेम एवं सहयोग मिला। उन्होंने अपना पार्थिव शरीर ८ जून, '८४ को सायं ४ बजे साल्टलेन, कलकत्ता स्थित अपने आवास पर छोड़ दिया।

इस महान् कर्मयोगी, पथ-प्रदर्शक एवं कुशल संगठनकर्त्ता को भारतीय मजदूर संघ का सतनमन् !

—सम्पादक

बिस्कोमान

जीवन के हर मोड़ पर
आपकी सेवा में प्रस्तुत-बिस्कोमान
आप चाहे जो भी हों—नगरवासी या किसान—

आपके जीवन के हर मोड़ पर बिस्कोमान आपकी सेवा में प्रस्तुत है।

★ हरा बहार :-

बिस्कोमान आपके खेतों के लिए हराबहार (18 : 18 : 6) दानेदार खाद तैयार करता है जो सब तरह की फसल के लिए उपयुक्त है। इसमें वे सभी तत्व मौजूद हैं जो पौधों को हरा-भरा और दानों को पुष्ट बनाते हैं। यही कारण है कि आज हर किसान की पहली पसंद है—"हरा बहार"।

★ कामधेनु :-

खेतों के लिए हराबहार तो पशुओं के लिए कामधेनु जैसा संतुलित और पौष्टिक आहार बनाना भी बिस्कोमान का ही काम है। यह बाजार में पशुओं के लिए उपलब्ध सभी आहारों में बेजोड़ है। इसके खाने से पशु हृष्ट-पुष्ट तो होते ही हैं, दूध देनेवाले पशु ज्यादा दूध देते हैं।

★ बिस्कोमान पावरोटी :-

"बिस्कोमान पावरोटी" कुशल कारीगरों द्वारा तैयार की गई विटामिन "ए" और "डी" से भरपूर यह पावरोटी रंगारंग कागज में सज-सबंर कर आपके पास पहुँचेगी आप दूसरी पावरोटियों को भूल जाएंगे। यह होगा सबके लिए पौष्टिक आहार ताजा और मजेदार।

याद रखिए, बिस्कोमान सिर्फ यही सब नहीं करता, यह राज्य के दूर-दराज क्षेत्रों में स्थित अपने बिक्री केन्द्रों के जरिए उन्नत बीज, खाद और कीटनाशकों की आपूर्ति भी करता है। इसके अलावा किसानों की उपजाई चीजों को लागत मूल्य पर खरीदना, उपज को शीत भण्डारों में रखने की सुविधा हेतु शीत भण्डार या गोदाम बनाना भी बिस्कोमान का काम है।

और इन सबके अलावा पटना शहर एवं राज्य के 9 जिलों में रहने वालों के लिए नियंत्रित मूल्य पर जलावन कोयला की आपूर्ति भी बिस्कोमान द्वारा की जाती है।

इसलिए तो—

जीवन के हर मोड़ पर, जहाँ भी चाहिएगा
बिस्कोमान को पाइएगा

एस० एन० मिश्र, भा० प्र० से०
प्रबन्ध निदेशक

तपेश्वर सिंह, एम० पी०
अध्यक्ष

बिहार राज्य सहयोग क्रय-विक्रय संघ सीमित

पटना-800 001

सम्पादकीय

बिहार के मजदूर : जायें कहां......?

बिहार के लाखों विश्वकर्मा पूत दाने-दाने को मोहताज हैं। गरीबी, पिछड़ेपन में यह देश अद्वितीय है जबकि साधन विपुलता में सबसे आगे। गरीबी रेखा के नीचे जीनेवालों में कोसो आगे और आगे है बाढ़, सूखा प्राकृतिक आपदाओं में भी। यह बिहार की नियति नहीं है। रत्नगर्भा वसुन्धरा, शस्य श्यामला गंगा आदि नदियों की धरा में जीवनी शक्ति का अभाव है, ऐसी बात भी नहीं। कर्मठता में भी किसी से कम नहीं। इसका उदाहरण है—देश-विदेश में फैले श्रम-शक्ति के आधार पर बिहारी श्रमजीवियों की संख्या। कठिन परिस्थिति में भी संघर्ष के बीच मार्ग निकालने की अद्भुत जीवनी शक्ति है, बिहारवासियों में। परन्तु, फिर भी पीछे हैं, पिछड़े हैं, उपेक्षित हैं।

यदि कतिपय मूर्धन्य निकायों को छोड़ दिया जाय तो बिहार में औद्योगिक प्रगति की यथेष्ट उपलब्धि का कोई विशिष्ट स्थान नहीं है। औद्योगिक विकास की संभावनायें अपार हैं, पर उद्योग नहीं हैं। जो हैं वे किस स्थिति में हैं देश के सभी लोग अवगत हैं। निकट भविष्य में किसी ऐसी क्रांति की संभावना भी नहीं है।

१८ हजार मजदूरों वाला रोहतास उद्योगपुंज बन्द हो गया। गत दो वर्षों से लगातार संघर्षरत मजदूरों के पास अब शोषण की स्मृति के अलावे है क्या? तालाबन्दी, ले-आफ तब क्लोजर। सरकार न चुप न सक्रिय। १० सितम्बर तक कारखानों को सरकारी प्रबंध में लेने का आश्वासन असफल। दूसरी ओर प्रबंधक लम्बे अर्से की अपनी योजना में सारा उत्पादन बाजार में भेजकर पूर्णतः सफल। सरकारी ऋण, सहाय्य, कर भुगतान का सरल उपाय कृत्रिम औद्योगिक अशान्ति। अब देखें क्या करती है, बिहार की लोकप्रिय सरकार। अशोक पेपर मिल, ठाकुर पेपर मिल, जुट मिल, कुमारधुबी फैक्ट्री का इतिहास दुहराना व्यर्थ है। बिहार राज्य चीनी निगम की ११ इकाईयों में वेतन देने की क्षमता तक नहीं है। रूग्ण इकाईयों का अधिग्रहण प्रबंधकों के हित में करके सरकार चैन की बंसी बजा रही है। बिहार के पचासो निगमों में जल-विकास निगम के १० हजार कर्मचारी सरकार को अपनी आवाज सुनाने में असमर्थ रहे। समाचार पत्रों में भूख से अनेक की मृत्यु प्रकाशित होती रही। पथ परिवहन निगम, बि० रा० आवास बोर्ड, लघु उद्योग-विकास निगम, कृषि उद्योग विकास निगम स्थापना खर्च वहन में भी अक्षम है। हजारो दैनिक वेतनभोगी कामगारों की रोजी भी चली गयी।

२० सूत्री कार्यक्रम के तहत् विशेष नियोजन योजना और न्यूनतम नियोजन योजना कहाँ चल रही है, कौन मजदूर उससे रोजी पा रहा है, कहना कठिन है। सरकारी साये में चलने वाली ये योजनायें केवल बन्दरबांट के लिए बनी हैं, ऐसा स्पष्ट है। परन्तु, राज्य का मूर्धन्य वित्त इस पर अर्थात् लगभग १००० करोड़ का उद्व्यय है, इनपर। वर्षों से उद्घाटित और शिलान्यासित अनेक कारखानों का गंगावतरण धरा पर होगा भी यह संदेहास्पद है।

दूसरी ओर अनुत्पादक मदों पर व्यय, फिजूल खर्ची, योजनाओं में कटौती, प्रशासनिक भ्रष्टाचार की चर्चा में बिहार सर्वाधिक आगे है। प्रतिदिन अनेक धनपति उगते नजर आ रहे हैं। सहकारिता का पर्याय भ्रष्टाचार

बन गया है। ऐसी हालत में बिहारी श्रमिकों का पलायन और शोषण कौन रोकेगा। इसके साथ अनेक सामाजिक विकृतियां भी तीव्र गति से उभर रहीं हैं।

रही-सही कमी छः लाख सरकारी कर्मचारियों एवं शिक्षकों की शतप्रतिशत हड़ताल ने पूरी कर दी है। ४ सितम्बर से चालू इस हड़ताल में सरकार को आलोचना के लिये कुछ भी नहीं मिला है। शतप्रतिशत हड़ताल, शांतिप्रिय हड़ताल। परन्तु सरकार वास्तव में सरकार है। वह क्यों झुकेगी ? क्यों मानेगी जायज मांगों को ? वह कृतसंकल्प है, बिहार को पीछे ले जाने के लिये। केन्द्रीय कर्मचारियों, रेलकर्मियों, डाक-तारसेवियों, प्रतिरक्षा-कर्मियों, विद्युत मजदूरों को उत्पादकता या सामान्य बोनस देनेवाली सरकार के पास कोई साधन उसी के द्वारा पूर्वघोषित मांगों के भुगतान के लिये नहीं बची है। दीपावली-दशहरा के चकाचौंध में मर्माहत कर्मचारी-शिक्षक आंसू के दीप जलायेंगे। केन्द्र भी चुप है। न कोई नीति है, न राजनीति। अन्यथा निदान निकल जाता। अब सरकार ने लाठी उठा लिया है, कलम के साथ भिड़न्त के लिये। परिणाम क्या होगा, मनोबल टूट जायेगा या फिर वुभुक्षितः किम् न करोति पापम्।

प्रश्न है, जिम्मेवार कौन है ? मजदूर या व्यवस्था या बिहार की नियति। हर विवेकशील प्राणी जिसे बिहार प्रिय है, सोचता है, सबेरा कब होगा। घोषणाओं के जंगल में कहीं कोई मार्ग है, दूर विकास की ओर जाने का। बन उदास है, उसका बहुमूल्य उत्पादन कौड़ियों के मोल बाजार में जाता है। कहीं दूर वह औषधि, तेल या सुवासित साबुन बनाता है, पर बिहार की धरती पर नहीं। समय आ गया है जब सरकार को छोड़ इस ओर सबों को सोचना है। बेकार हाथों को गलत शस्त्र पकड़ने नहीं देने के लिये आवश्यक है यहां उद्योगों की संवृद्धि, संरक्षण एवं शोषण से मुक्ति के लिये सतत् प्रयास की। अन्यथा विश्वकर्मा-पूत कब कितने मरेंगे, मारे जायेंगे चाहे भूख से या सरकार या प्रबन्धन की आर्थिक मार से।

—सम्पादक

पश्चिमीकरण के बिना आधुनिकीकरण

दत्तोपंत ठेंगड़ी
संस्थापक, भारतीय मजदूर संघ

इस विषय पर चर्चा करने से पूर्व 'आधुनिकीकरण' और 'पश्चिमीकरण' शब्दों के अर्थ का स्पष्ट निर्धारण करना आवश्यक है।

क्या हम 'आधुनिकीकरण' की परिभाषा कर सकते हैं? 'आधुनिक' का अर्थ है—'वर्तमान और अभिनव काल का' अथवा 'वर्तमान या अभिनव काल की विशेषताओं वाला।'

रूढ़िगत रूप में, 'आधुनिकतावाद' शब्द का आशय है आधुनिक विचार अथवा पद्धति; धार्मिक विश्वासों के संबंध में, आधुनिक विचारों, शब्दों अथवा अभिव्यक्तियों के साथ परंपरा का सामंजस्य स्थापित करने की प्रवृत्ति।

स्पष्टत: यह अर्थ यूरोप की विशिष्ट ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का स्वाभाविक परिणाम है। यह उस देश के सन्दर्भ में अप्रासंगिक हो जाता है, जहाँ कोई चर्च नहीं था, कोई संगठित पुरोहित वर्ग नहीं था, कोई धर्म-सम्प्रदायगत उत्पीड़न नहीं था, और धार्मिक सम्प्रदायों तथा विज्ञानों के बीच कोई परस्पर विरोध नहीं था।

इसलिए इतर-यूरोपीय देशों के लिए 'आधुनिकीकरण' का अर्थ केवल 'भविष्य में सर्वांगीण प्रगति की सुनिश्चित व्याख्या करने के उद्देश्य से आधुनिक काल की समस्याओं को हल करने और चुनौतियों का सामना करने का साधन' होना चाहिए।

पश्चिमीकरण की परिभाषा और 'पश्चिमीकरण' क्या है?

मोटे रूप से इसका अर्थ है, 'पूर्वी लोगों अथवा देशों द्वारा पाश्चात्य जीवन के विचारों, आदर्शों, संस्थाओं, प्रणालियों, संरचनाओं, जीवन-यापन के मानदण्डों और जीवन-मूल्यों को अपनाया जाना।'

किन्तु यह निर्धारित करना सरल नहीं है कि वस्तुत: 'पश्चिमी' क्या है। जहाँ तक मानवीय ज्ञान की निरन्तर बढ़ती हुई सीमाओं का सम्बन्ध है, यह उल्लेखनीय है कि 'सत्य' की कोई जाति, कोई समुदाय, कोई दल, कोई वर्ग, कोई राष्ट्र नहीं है। सत्य सदैव सार्वभौम होता है। उदाहरणार्थ, क्या कोई बता सकता है कि निम्नलिखित तत्त्व पश्चिम के हैं या पूर्व के?

१. पाइथागोरस—जिसका उल्लेख अलेक्जेंड्रिया के राजा ने उसे 'एक ब्राह्मण का शिष्य' बताकर किया था—का सुप्रसिद्ध प्रमेय।

२. पश्चिम का परमाणु-सिद्धान्त, जिसकी पूर्व धारणा सहस्रों वर्ष पूर्व कणाद के परमाणुवाद में की गयी थी।

३. हेगेल और मार्क्स का द्वन्द्ववाद, जिसकी परिकल्पना सर्वप्रथम कपिल मुनि द्वारा की गयी थी जिन्होंने इसे दर्शन के रूप में सूत्रबद्ध किया था।

४. यह तथ्य कि पृथ्वी सूर्य के चारो ओर घूमती है, सूर्य पृथ्वी के चारो ओर नहीं; जिसे कापरनिकस ने और कापरनिकस से एक सहस्र वर्ष से भी अधिक समय पूर्व आर्यभट्ट ने सिद्ध किया था।

५. डेमोक्रेट्स का भौतिकवाद, जिसका सर्वप्रथम सूत्र (असतो सत् अजायत—असत् से सत् उत्पन्न हुआ) शताब्दियों पूर्व बृहस्पति द्वारा लिखा गया था।

६. दिक्काल की वैज्ञानिक संकल्पनाएँ, जिनकी व्याख्या आइन्स्टाइन द्वारा की गयी और जिनका निरूपण सर्वप्रथम वेदान्ती दार्शनिकों द्वारा किया गया था।

७. द्रव्य की वैज्ञानिक परिभाषा, जो आधुनिक विज्ञान को सर्वप्रथम हाइज़नवर्ग द्वारा और हिन्दुओं को पतंजलि द्वारा दी गयी।

८. दिक्-काल की सापेक्षता, ब्रह्माण्ड की एकता, दिक्-काल का सातत्यक, जिनका प्रतिपादन प्राचीन समय में वैदिक मनीषियों ने किया था और जिन्हें प्रमाणित इस शताब्दी में आइन्स्टाइन द्वारा किया गया।

९. वैज्ञानिक-दार्शनिक चिन्तन की प्रक्रिया, जो नासदीय सूक्त के परमेष्ठि प्रजापति द्वारा प्रारम्भ की गयी और जिसे आइन्स्टाइन द्वारा शिखर तक पहुँचाया गया।

जैसा कि एच० जी० चेर्निशेवस्की ने कहा है, "आधुनिक विज्ञान की शाखाओं द्वारा जिन सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी है और जिन्हें सिद्ध किया गया है, उन्हें पहले ही यूनानी दार्शनिकों ने और उनसे भी बहुत पहले भारतीय मनीषियों ने प्राप्त करके सही मान लिया था।"

विज्ञान की सभी शाखाओं और प्राद्योगिकी पर भी यही बात लागू होती है। यह सच है कि पश्चिम में इस दिशा में प्रगति यूरोपीय पुनर्जागरण के बाद प्रारंभ हुई और इस समूचे मध्यवर्ती काल खण्ड में हम सामान्य गति से आगे नहीं बढ़ सके, जिसका एकमेव कारण यह है कि एक राष्ट्र के रूप में हम इस संपूर्ण अवधि में जीवन-मरण के संघर्ष में जूझ रहे थे; किन्तु यह एक निर्विवाद तथ्य है कि यूरोपीय पुनर्जागरण से पूर्व, जब यूरोप में अन्धकार का युग था, हिन्दू विज्ञान और हिन्दू कलाएँ अरब देशों और फारस के मार्ग से यूनान पहुँची थीं। न्यूटन ने एक बार कहा था, "यदि मैं दूसरों से आगे देख सका हूँ तो इसका कारण यह था कि मैं महामानवों के कन्धों पर खड़ा था।"

जो बात व्यक्ति के बारे में सत्य है, वह राष्ट्र के बारे में भी उतनी ही सत्य हो सकती है। आज हम यूरोपीय महामानवों के कन्धों में खड़े होने के आकांक्षी हैं; किन्तु पश्चिम इन महामानवों को जन्म ही इस कारण दे सका था कि पुनर्जागरण-काल में यूरोप का समूचा बुद्धिजीवी वर्ग महामानवों के कन्धों पर खड़ा था। इसलिए ज्ञान की किसी शाखा को 'पश्चिमी' अथवा 'पूर्वी' कहना अवास्तविक होगा। ज्ञान संपूर्ण रूप से सार्वभौम है। तो यथार्थ में 'पश्चिमी' क्या है ?

भिन्न संस्कृतियाँ :

यद्यपि मानव-मन हर स्थान पर मूलतः एक जैसा ही है, फिर भी इस तथ्य से इन्कार करना अवास्तविक होगा कि अतीत में विभिन्न समाज भिन्न-भिन्न स्थितियों तथा भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक घटनाचक्रों से होकर आये हैं और इन बातों ने प्रत्येक समाज की सामूहिक चेतना पर गहरी छाप छोड़ी है। भूगोल और इतिहास इस अन्तर के मुख्य कारण हैं।

उदाहरणार्थ, भारत के बारे में विन्सेंट स्मिथ का कथन है कि "भारत जिस प्रकार समुद्रों और पर्वतों से घिरा हुआ है, उससे वह निर्विवाद रूप से एक भौगोलिक इकाई है और इस प्रकार उसे एक ही नाम से पुकारना सर्वथा उचित है। उसकी सभ्यता की भी ऐसी बहुत-सी विशेषताएँ हैं जो उसे विश्व के अन्य सभी क्षेत्रों से भिन्न बनाती हैं; जबकि समूचे देश में ये विशेषताएँ इस सीमा तक समान रूप से विद्यमान हैं कि उसे मानव जाति के सामाजिक, धार्मिक और बौद्धिक विकास के इतिहास में एक इकाई मानने का पर्याप्त औचित्य है।"

अन्य बातों के साथ-साथ भौगोलिक-राजनीतिक कारणों से इन अन्तरों के निर्माण में पर्याप्त योगदान मिलता है।

इन सभी विशिष्ट कारकों से विभिन्न संस्कृतियों का निर्माण होता है।

'संस्कृति' की परिभाषा :

'संस्कृति' शब्द का अर्थ है किसी समाज के मानस पर पड़े प्रभावों की प्रवृत्ति, जो उसकी अपनी विशेषता होती है और जो उसके संपूर्ण इतिहास में उसके मनोवेगों, मनोभावों, विचारों, वाणी और कार्यों का सम्मिलित परिणाम होती है। उदाहरणार्थ प्रभावों की यह प्रवृत्ति अरब के मरुस्थल और गंगा के मैदानों के समाजों में, या जर्मनी में, जो एक खुले मैदान में लगे शिविर के समान है, और इटली में, या एकाकी ग्रेट ब्रिटेन, आधुनिक अमरीका अथवा प्राचीन भारत में समान नहीं हो सकती।

पश्चिमीकरण :

जब 'पाश्चात्यवाद' शब्द का प्रयोग किया जाता है तो अभिप्राय होता है पश्चिमी संस्कृतियाँ और पश्चिमी प्रतिमान (Paradigm)। तथा जब हम 'पाश्चात्यकरण' के साथ, अथवा उसके बिना, 'आधुनिकीकरण' की बात करते हैं, तो हम वास्तव में यह प्रश्न उठाते हैं कि पश्चिमी प्रतिमान को प्रगति और विकास का सार्वभौम आदर्श स्वीकार किया जाना चाहिए अथवा नहीं।

जिस प्रकार सही निदान आधा उपचार होता है, उसी प्रकार प्रश्न की उपयुक्त रचना से उत्तर ढूँढ़ने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

हममें से कुछ संभवतः यह सोच रहे होंगे कि हिन्दुओं के इस देश में जिनके पूर्वजों ने सभी दिशाओं से सद्विचारों का स्वागत किया था और 'पृथिव्यैः समुद्र पर्यन्ताम् एकराट्' की घोषणा की थी, यह सारी चर्चा अप्रासंगिक है। हिन्दुत्व की, जो इसके अनुयायियों को शेष मानव-जाति से अलग बनाता है, कतिपय विलक्षण और अद्वितीय विशेषताएँ हैं। अनेकता में एकता देखने के अभ्यस्त होने के कारण हिन्दू किसी भी क्षेत्र के नये विचारों और संरचनाओं को अपने अनुकूल ढालने में तथा उन्हें अपने राष्ट्र-जीवन में आत्मसात् करने में सिद्धहस्त हैं। सृष्टि के शाश्वत नियमों के प्रकाश में, अब से ग्यारह शताब्दी पूर्व तक उनकी सामाजिक व्यवस्था निरन्तर परिवर्तन-शील रही। नीतिकारों द्वारा रचित विभिन्न स्मृतियों के माध्यम से, संश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा पुरानी व्यवस्था में समय-समय पर परिवर्तन होता रहा और नयी व्यवस्था पुरानी व्यवस्था का स्थान लेती रही। हिन्दुओं की उदारता से विभिन्न प्रणालियों के शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व की व्यवस्था हो सकी।

वैलेन्टीन किरोल तक ने कहा है कि हिन्दू धर्म सदैव असाधारण रूप से तरल बना रहा और "इससे इसके अन्तर्गत परस्पर न्यूनतम से अधिकतम तक अन्तरों वाले भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों को पनपने में सहायता मिली, जिनमें से कुछ विशुद्ध रूप से ईश्वरवादी थे तो कुछ घोर अनीश्वरवादी, किन्तु प्रायः ही उनकी परिणति सर्वेश्वरवाद में हुई," इसी विशेषता के कारण मैक्समूलर को यह कहने की प्रेरणा मिली—"यदि मुझसे पूछा जाय कि मानव मन ने किस आकाश के नीचे अपने सर्वोत्तम गुणों का सर्वाधिक विकास किया है, जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं पर पूर्ण चिन्तन-मनन किया है और उनमें से कुछ का समाधान पा लिया है, जो उन व्यक्तियों के ध्यान के भी पात्र हैं जिन्होंने प्लेटो और कांट के दर्शन का अध्ययन किया है, तो मैं भारत की ओर संकेत करूँगा। यदि मैं अपने आप से पूछूँ कि हम यूरोपवासी किस साहित्य से ऐसी शिक्षा ले सकते हैं जो हमारे जीवन को अधिक पूर्ण, अधिक विश्वजनीन और वस्तुतः अधिक मानवीय बनाने के लिए सर्वाधिक आवश्यक है तो मैं पुनः भारत की ओर संकेत करूँगा।" हिन्दुओं को, जिनका देश, मैक्समूलर के अनुसार यूरोपीय भाषाओं और यूरोपीय धार्मिक सम्प्रदायों का आदि स्रोत रहा है और जिनके चिन्तक-मनीषी, इस्लामी शरीर में हिन्दू आत्मा' अथवा 'भारतीय आत्मा और पश्चिमी द्रव्य के सश्लेषण' की बात कर सकते हैं, पश्चिम की किसी वस्तु को अंगीकार करने में भला घबराहट क्यों होगी ?

हमें स्पष्ट रूप से यह समझ लेना चाहिये कि पाश्चात्यकरण की प्रक्रिया न इतनी सरल है और न ही निर्दोष। अतीत में हमने विदेशी संस्कृतियों, संरचनाओं और प्रणालियों में जो कुछ अच्छा देखा उसे अपने अनुकूल

ढालकर और आत्मसात् करके अपने सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय व्यक्तित्व को सदैव समृद्ध किया और सुदृढ़ बनाया है। किन्तु हर बार यह प्रक्रिया आत्मसात् करने की प्रक्रिया रही है। इसके विपरीत, 'पश्चिमीकरण' की अवधारणा का निहितार्थ है अपनी सांस्कृतिक अस्मिता और राष्ट्रीय व्यक्तित्व को खो बैठना, इसका अभिप्राय है विदेशी संस्कृति द्वारा हमें आत्मसात् कर लिया जाना और उसमें हमारा विलीन हो जाना। यदि पश्चिम के पास कोई अच्छी वस्तु हमें बेचने के लिए हो भी तो क्या हमें अपने व्यक्तित्व का मूल्य चुकाकर उसे खरीदना चाहिए? यीशु मसीह ने पूछा था, "यदि तुम्हें पृथ्वी का शासन मिल जाय, पर उस व्यापार में तुम अपनी आत्मा को खो बैठो, तो उसका क्या लाभ?" वर्तमान संदर्भ में भी यह प्रश्न उतना ही संगत है।

आत्मसात्करण? स्वीकार है। पर व्यक्तित्व गँवाना? स्वीकार्य नहीं।

किन्तु 'आत्मसात्करण' 'पाश्चात्यकरण' की प्रक्रिया को नकारता है। हमारी चर्चा का केन्द्र-बिन्दु है 'पाश्चात्यकरण' की समस्या।

व्युत्पत्ति :

इस सबकी व्युत्पत्ति क्या है? इतिहास ने अनेक साम्राज्यों का उत्थान-पतन देखा है। प्रत्येक साम्राज्य के चरमोत्कर्ष के समय उसकी सभ्यता उसके अधीनस्थ राज्यों द्वारा आदर्श मानी जाती थी। उसके पतन के बाद उसकी सभ्यता कुछ दशकों में अपनी चमक-दमक खो बैठती थी। पर श्वेत जातियों के साम्राज्यवाद की समाप्ति की विशेषताएँ ये हैं :—

१. इसके भूतपूर्व उपनिवेशों में बौद्धिक एवं वैचारिक क्षेत्र पर इसकी पकड़ बनी रही, जो साम्राज्य के दिनों में मस्तिष्क, प्रक्षालन के लिए किये गये प्रचार का स्वाभाविक परिणाम है।

२. साम्राज्यवादी देशों द्वारा इन देशों की अर्थ-व्यवस्थाओं को अपने पाश में जकड़े रखने तथा उसे और सुदृढ़ करने के लिए दृढ़ निश्चयपूर्वक प्रयत्न किया जाना, जिसके कारण उत्तरी श्वेत देशों और दक्षिणी अश्वेत देशों के बीच, जो गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के अंग हैं, एक प्रकार की रस्साकसी प्रारम्भ हो गयी है।

मैकाले की सफलता :

भारत में 'श्वेत मानव के दायित्व-भार' का विचार हिन्दू बुद्धिजीवियों से मनवाने, उसके मन में हीनता की भावना पैदा करने और उनसे यह स्वीकार कराने में मैकाले के प्रयास सफल हो गये कि यूरोपीय सभ्यता ही उच्च स्तरीय और आदर्श सभ्यता है। हमें यह बताया गया कि विश्व के प्रत्येक समाज या जाति के लिए विकास की उन अवस्थाओं में से पार होना आवश्यक और अनिवार्य है जो यूरोपीय इतिहास की विशेषताएँ हैं। प्रत्येक भारतीय स्थिति को यूरोपीय मानदण्डों से मापा जाना चाहिए, इससे कोई परित्राण नहीं है, क्योंकि, हमें बताया गया, यूरोपीय प्रतिमान ही प्रगति और विकास का सार्वभौम आदर्श है।

अब तो यह भी सन्देहास्पद है कि पश्चिमी प्रतिमान से पश्चिम वासियों को अपने चिरवांछित लक्ष्यों को प्राप्त करने में भी सहायता मिल सकती है या नहीं। अपने प्रतिमान की उपादेयता के सम्बन्ध में पश्चिम में भी संशय बढ़ता जा रहा है। अब वे लोग अनुभव कर रहे हैं कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की चकाचौंधपूर्ण उन्नति वस्तुतः एक अमिश्रित वरदान नहीं है। पारिस्थितिकीय तत्त्वों या भावी पीढ़ियों की नियति पर ध्यान दिये बिना, प्रकृति के साथ जो बलात्कार किया जा रहा है, वह अब उल्टा परिणाम दिखाने लगा है। अब उन्हें आशंका होने लगी है कि तदनुरूप सांस्कृतिक उत्थान के बिना औद्योगिक विकास मानवजाति को सम्पूर्ण विनाश की ओर ले जा सकता है। कुछ पश्चिमी वैज्ञानिकों का सुझाव है कि पश्चिम में प्रौद्योगिकी के और आगे विकास को नियंत्रित करने, उसके बारे में मार्ग-दर्शन प्रदान करने और निर्देश देने के लिए 'प्रौद्योगिकीय लोकायोग' की

स्थापना की जानी चाहिए, जिसमें उच्च सांस्कृतिक स्तर के व्यक्ति सम्मिलित किये जायें।

इस तथ्य की उपेक्षा करते हुए कि पश्चिम में अभी हर वस्तु प्रयोग की अवस्था में है और अभी समय की कसौटी पर उसका परीक्षण नहीं हुआ है, हमने उनके जीवन-मूल्यों की, जो भौतिकवाद, उपभोक्तावाद (यदि वस्तुतः भोगवाद नहीं), मानव केन्द्रवाद और विशुद्ध व्यक्तिवाद पर आधारित हैं, सराहना और प्रशंसा करने की शीघ्रता की। अब यह अनुभव किया जा रहा है कि ये वही जीवन-मूल्य हैं जो अमरिका में, जहाँ एकाकी और आत्म-विमुख व्यक्तियों की भारी भीड़ है, व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक जीवन के विघटन एवं छिन्न-भिन्न होने के लिए उत्तरदायी हैं। उनकी जीवन-प्रणालियों में क्षय और गिरावट के लक्षण दिखाई देने लगे हैं। पश्चिमी संसदीय लोकतंत्र की विफलता स्पष्ट है।

अलेक्जेंडर सोल्जेनित्सिन ने ठीक ही कहा है कि "आज पश्चिमी लोकतांत्रिक देश राजनीतिक संकट और आध्यात्मिक विभ्रम की अवस्था में हैं। दलीय प्रणाली के सम्बन्ध में उनकी निराशाजनक टिप्पणी उनके इस सुसंगत प्रश्न में व्यक्त होती है—"क्या राष्ट्रीय विकास का कोई दल-बाह्य अथवा नितान्त दल-विहीन मार्ग नहीं है?"

कम्युनिज्म की विफलता :

साम्यवाद भी, जो स्वयं को एक श्रेष्ठ विकल्प के रूप में प्रस्तुत करके सामने आया था, बुरी तरह से विफल रहा है। एक-केन्द्रीय कम्युनिष्ट विश्व के स्वप्न का भंग होना; सत्ताधारी कम्युनिष्ट दलों द्वारा मार्क्स के आधारभूत सिद्धान्तों से विचलन, कोस्टलर, जिलास, राय, डेब्र और अन्य आदर्शवादियों द्वारा कम्युनिष्ट विचार-धारा का त्याग; पोलैण्ड और अन्य पूर्व यूरोपीय देशों में श्रमिकों का विद्रोह; इटली और स्पेन के कम्युनिष्ट दलों के नेताओं द्वारा सार्वजनिक रूप से प्रकट निराशा तथा द्विविधाग्रस्त नव-वामपंथियों का प्रतिक्रियावादी उदय—ये सभी साम्यवाद के क्षय के सुस्पष्ट संकेत हैं, यद्यपि जिस भवन के बनने में डेढ़ सौ वर्ष लगे हैं, उसके पूर्णतः धराशायी होने में कुछ और समय लगेगा।

पश्चिम के थोड़े-से, किन्तु अधिक विवेकशील व्यक्ति पहले से ही एक नये मार्ग, एक नयी मूल्य-प्रणाली, एक नयी संस्कृति और एक नये प्रतिमान की खोज कर रहे हैं।

जिस लक्ष्य या उद्देश्य से पश्चिम का हितसाधन नहीं हुआ, वह पूर्व के लिए सहायक सिद्ध नहीं हो सकती।

यूरोपीय अनुभव की सार्वभौमिकता की कल्पना भी निर्मूल सिद्ध हुई है। इतिहासकार मो० कुतुब ने ठीक ही कहा है कि "आर्थिक विकास की विभिन्न अवस्थाओं में साम्यवादी समाज और दासता, पूँजीवाद और तब अन्तिम साम्यवाद अर्थात् अन्तिम साम्यवादी समाज की परिकल्पना की गयी है। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का वर्णन मानव-जाति के इतिहास की साझी घटना के रूप में किया जाता है, जबकि वास्तव में यूरोपीय इतिहास के बाहर इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यूरोप से बाहर की किसी जाति के लोग इन अवस्थाओं में से होकर कभी नहीं निकले।"

प्राचीन हिन्दू राष्ट्र के सम्बन्ध में उपर्युक्त टिप्पणी अधिक संगत और महत्त्वपूर्ण है। इस संदेह के लिए पर्याप्त आधार है कि राजनीतिक साम्राज्य की समाप्ति के बाद भी आर्थिक और वैचारिक साम्राज्यवाद को बनाये रखने के धूर्ततापूर्ण कुटिल उद्देश्य से प्रेरित होकर ही सार्वभौमिकता की उपर्युक्त मिथ्या धारणा का प्रचार किया गया है। तृतीय विश्व के देश उत्तर-दक्षिण वार्त्ता की निरर्थकता और स्वावलम्बन के लक्ष्य की अनिवार्यता को अधिकाधिक अनुभव करने लगे हैं। इस लक्ष्य के कारण विकास के आदर्श में परिवर्त्तन करना भी आवश्यक हो गया है।

क्योंकि, दुर्भाग्यवश तृतीय विश्व के देशों के लिए इतिहास अपने-आपको बिलकुल उसी ढंग से नहीं दोहरायेगा।

कुछ शुभ संयोग, जिनके सामूहिक परिणामों से औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात हुआ, ये थे—वायुयान युग से पूर्व युग में समुद्री-मार्गों के भौगोलिक-राजनीतिक

महत्व में हुई नई वृद्धि; प्रचुर कच्ची सामग्री और विपणन की सम्भावनाओं वाले देशों पर शासन करने वाली शक्तियों की अपने देशों के विकास-कार्यों में तन्मयता; नौसैनिक शक्ति प्राप्त देशों के लिए साम्राज्य-निर्माण की परिस्थितियों का अनुकूल होना; उपनिवेशों के शोषण के आधार पर स्वदेशी अर्थ-व्यवस्थाओं का पोषण करने के व्यावहारिक अवसर उपलब्ध होना। ये सभी परिस्थितियाँ तृतीय विश्व के देशों के लिए फिर से उत्पन्न नहीं होंगी। श्वेत राष्ट्रों की समृद्धि का निर्माण जिन नींवों पर किया गया था, वे अब अश्वेत देशों को उपलब्ध नहीं होंगी। इसलिए पश्चिमी उदाहरण का अनुकरण करना तथा पश्चिमी प्रतिमान को आदर्श के रूप में स्वीकार करना निरर्थक है।

पश्चिमी प्रतिमान की निष्फलता और ऐतिहासिक घटना-चक्रों से महत्वपूर्ण अन्तर को देखते हुए दक्षिणी देशों के सभी राष्ट्रीय संघर्षों के लिए नया लक्ष्य अथवा उद्देश्य निर्धारित करना आवश्यक है।

हम सब हिन्दू जीवन-लक्ष्य और उसे प्राप्त करने की पद्धतियों से सुपरिचित हैं। उसे दोहराने की आवश्यकता नहीं है।

इस चर्चा के प्रयोजन की दृष्टि से इस बात का कोई महत्व नहीं है कि कोई हिन्दुओं की सांस्कृतिक श्रेष्ठता को स्वीकार करता है या नहीं। किन्तु सब लोग सर्व-सम्मति से यह स्वीकार करते हैं कि हिन्दू संस्कृति की अपनी सुनिश्चित विशेषताएँ हैं।

अपना स्वकीय कार्य :

मैं सीधे यह आग्रह करूँगा कि हमें अपनी संस्कृति, अपनी प्राचीन परम्पराओं के प्रकाश में, प्रगति और विकास का अपना स्वयं का आदर्श प्रतिमान तैयार करना चाहिए। हमें पश्चिम के प्रतिमान का गहराई से अध्ययन करना चाहिए, परन्तु उसे भविष्य के लिए अपना आदर्श प्रतिमान स्वीकार नहीं करना चाहिए। आपमें से कुछ को यह दृष्टिकोण पुस्तकीय (यदि लोकोत्तर नहीं) और आवेगजन्य (यदि भावुकतापूर्ण नहीं) लगेगा। जो लोग सुरक्षित होकर चलने और संकट न उठाने के अभ्यस्त हैं उन्हें यह बात अंधेरे में लगायी जानेवाली छलांग—किसी अज्ञात समुद्र अथवा अपरिचित मार्ग पर उठाया जाने वाला विवेकशून्य पग लगेगी। किन्तु ऐसी कोई बात नहीं है। हमारी अपनी सांस्कृतिक परम्परा और विपुल ऐतिहासिक अनुभवों के अतिरिक्त, कुछ अश्वेत देशों, जैसे जापान और माओ के चीन के उदाहरण और अनुभव हमारे सामने हैं। हमें विदित है कि जापान ने चयनात्मक रूप में पश्चिमी प्रौद्योगिकी को अपनाकर भी अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को अक्षुण्ण बनाये रखा है और माओ ने, जिसे मार्क्सवाद के चीनीकरण का श्रेय दिया जाता है, यह घोषणा करने का साहस रहा है कि "आधुनिकीकरण पश्चिमीकरण नहीं है।"

दक्षिणी देश यदि अपनी हीन भावना त्याग दें और परस्पर सहयोग के लिए प्रतिबद्ध हो जायें तो वे अपने-आपको उससे कहीं अधिक समर्थ पायेंगे, जितना उत्तरी देश चाहते हैं कि वे (दक्षिणी देश) स्वयं को मानें। उन्हें छोटे से विआफ्रा के अनुभव से प्रेरणा मिलनी चाहिए। मानव तथा सामग्री सम्बन्धी उनके संसाधनों का स्तर कुछ भी हो, वे निश्चित रूप से अपनी स्वकीय औद्योगिक कार्य-नीति चुन सकते हैं और अपना औद्योगिक मानचित्र बना सकते हैं। वे कार्यकुशलता का आजीविका के साथ सामंजस्य स्थापित करके 'जन शक्ति द्वारा उत्पादन' के आदर्श-वाक्य का पालन कर सकते हैं और जहाँ तक सम्भव हो, डा० शूमैकर की मध्यवर्ती अथवा उपयुक्त प्रौद्योगिकी अपना सकते हैं। इस क्षेत्र में नये प्रवेशकर्त्ता होने के कारण, वे आरम्भ से ही परिस्थिति की अर्थशास्त्र और नीतिशास्त्र के बारे में समेकित दृष्टि अपना सकते हैं। उनके स्वदेशी प्रौद्योगिकी विदों से चाहे उनकी संख्या कितनी भी हो, यह अपेक्षा की जा सकती है कि वे—

समूचे विश्व भर की औद्योगिक प्रौद्योगिकी का गहराई से अध्ययन करें और उसे आत्मसात करें;

विदेशी प्रौद्योगिकी के जो अंश स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल हो, उनका पता लगायें और उन्हें अपनायें;

(शेष पृ० 23 पर)

राष्ट्रवाद के प्रखर उद्गाता—भगवान विश्वकर्मा

अरुण कुमार ओझा
महामंत्री, रिजर्व बैंक वर्कर्स आर्गनाइजेशन

अनादिकाल से भारतवर्ष में श्रम की प्रतिष्ठा रही है। ईशावास्योपनिषद में प्रत्येक व्यक्ति से श्रम करते हुए सौ वर्ष तक जीवन जीने की अपेक्षा है। अपने देश में मजदूरों का अलग अस्तित्व नहीं था। प्रत्येक व्यक्ति एक श्रमिक था। आरम्भ से ही श्रम-देवता के रूप में विश्वकर्मा की आराधना होती रही है।

आधुनिक काल में भी भारत का मजदूर, बिना पंथ व जाति का भेद किये, चाहे वह कश्मीर या केरल अथवा असम या सौराष्ट्र में सेवारत हो, श्रम के आदि देव भगवान विश्कर्मा की जयन्ती विभिन्न रूपों में मनाता है। उस दिन मजदूर छुट्टी मनाते हैं, औजारों की पूजा करते हैं भव्य समारोह आयोजित करके उत्सव मनाते हैं। सहस्रों वर्षों से अबाधित यह परम्परा चल रही है।

विश्वकर्मा जयन्ती के संबंध में दो मत प्रचलित हैं। दक्षिणी प्रदेशों में यह दिवस माघ शुक्ल त्रयोदशी को पड़ता है तथा शेष भागों, विशेषकर पूर्वी-उत्तरी हिस्सों में यह दिवस कन्या-संक्रांति के अवसर पर, जो प्रतिवर्ष १७ सितम्बर को पड़ता है, मनाया जाता है। विशाल भारत के विभिन्न क्षेत्रों के प्रचलित परम्परा के अनुसार जहां एक ओर उन दिवसों पर जयन्ती समारोह को मनाना आवश्यक माना गया है, वहीं पर एकरूपता लाने के लिये समूचे देश में १७ सितम्बर को ही 'राष्ट्रीय श्रम-दिवस' के रूप में इस दिवस को मनाने का निश्चय भारतीय मजदूर संघ में किया गया है।

यह बड़े ही दुर्भाग्य की बात है कि अपने देश की गौरवमयी परम्परा को विस्मृत कर पाश्चात्यवादी श्रम-संघटन इस पवित्र दिवस को भूलकर मई दिवस को श्रम-दिवस के रूप में मनाते हैं। इन श्रमिक नेताओं को यह नहीं भूलना चाहिये कि आज भी जमशेदपुर के उद्योगों में कार्यरत सभी मजदूर चाहे वे भारत के हों या विदेशी, बड़े ही हर्षोल्लास के साथ विश्वकर्मा जयन्ती को मनाते हैं। उस दिन कारखाना बन्द रहता है तथा बड़े पैमाने पर उत्सव का आयोजन होता है।

मई दिवस वर्ग-संघर्ष का प्रतीक :

मई दिवस वर्ग-संघर्ष तथा राष्ट्रीय विखंडन का प्रतीक है। पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् इस कल्पना ने जन्म लिया कि दुनिया दो वर्गों में विभाजित है—शोषक तथा शोषित। इस कल्पना ने राष्ट्र की सीमाओं को तोड़ने का आह्वान किया तथा आत्यंतिक घृणा (Intense hatred) के आधार पर क्रांति की अवधारणा की। घृणा के आधार पर सामाजिक समता की स्थापना—एक विरोधाभास—को जन्म दिया।

भारतवर्ष में एक पूर्ण समाजपुरुष की स्पष्ट परिकल्पना आरम्भ से ही रही। हम सभी भारत मां के पुत्र हैं—"पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। सम्पूर्ण सम्पत्ति ईश्वर की है। सभी घटकों को कर्म का अधिकार है। आवश्यकतानुसार संचय ही अभीष्ट है। व्यक्तिगत सम्पत्ति की अवधारणा अपने यहां कभी नहीं रही। इसलिये हमने समाज को दो वर्गों में नही बाँटा। हमने पूर्णत्व की कल्पना की, उसी को पारिभाषित किया।

विश्वकर्मा—श्रमजीवियों के मूल पुरुष :

पुराणों, वेदों तथा वैदिक ग्रंथों के वर्णन के अनुसार विश्वकर्मा ही समस्त कला, कौशल और उद्योगों के मूल

प्रवर्त्तक हैं। लुहार, सुनार, कुम्हार, दर्जी, शिल्पी, कृषक नाई इत्यादि सभी परिश्रमी तथा उद्योगशील समुदायों के वे मूल पुरुष हैं। समस्त उद्योगों के प्रवर्त्तक होने के कारण ऋग्वेद में लाक्षणिक रूप से उन्हें समस्त पृथ्वी तथा स्वर्ग का निर्माता कहा गया है। विश्वकर्मा ही संसार के समस्त श्रम, औद्योगिक, विकास और उत्पादन के आदिदेव हैं। अपने हाथ और बुद्धि कौशल द्वारा पदार्थों की सृष्टि करना उनका अधिकार और कर्त्तव्य था। वे शिल्प और विज्ञान के आचार्य थे। देवों के लिये वायुयानों का निर्माण करना उन्हीं का कार्य था। इन्द्र के लिये लंका, श्रीकृष्ण के लिये द्वारका तथा वृन्दावन, धर्मराज युधिष्ठिर के लिये इन्द्रप्रस्थ का निर्माण भी इन्होंने ही किया था। उन्होंने ही इंजीनीयरींग की सर्वप्रथम आधिकारिक पुस्तक की रचना की। देवताओं के लिये शस्त्रागार का निर्माण किया।

नि:स्वार्थ एवं अनासक्त भाव से मानवता की सेवा करने वाले नर पुंगवों को भारत में सदैव ही सम्मान का स्थान रहा है। अपने यहां सदैव से उत्तम कारीगरी करने वाले व्यक्ति को साक्षात् विश्वकर्मा की संज्ञा से आज भी लोग विभूषित करते आ रहे हैं। भगवान राम ने भी रामेश्वरम पुल के निर्माण की अलौकिकता को देखकर उसके प्रमुख निर्माता इंजीनीयरों बंधुद्वय नल व नील को "तनयो विश्वकर्मण:" के नाम से विभूषित करते हुये उन्हें सम्मान दिया था।

राष्ट्रवाद के प्रखर उद्‌गाता—विश्वकर्मा :

विश्वकर्मा जयन्ती द्वारा हमें राष्ट्रभक्ति का दिव्य संदेश प्राप्त होता है। 'स्व' की चिंता से मुक्त होकर इस आदिपुरुष ने 'राष्ट्र' को बचाने के लिये अपने ही पुत्र वृत्र को मारने के लिये दधीचि की हड्डियों से इन्द्र के लिये वज्र का निर्माण किया। आज के युग में श्रमिकों के लिये यह एक 'मोडेल' है—आदर्श है। भारतवर्ष की यही परम्परा रही है—समाज के लिये, राष्ट्र के लिये सर्वस्व का समर्पण ? होम ? पूर्णाहुति।

श्रम ही आराधना :

भारतवर्ष की अपनी विशेषतायें रही हैं। यहां नाई, लुहार, सुनार, धोबी इत्यादि अनेक बंधु स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय चलाते रहे हैं। ये सभी न किसी के मालिक हैं और न किसी के नौकर। आज की प्रचलित श्रमिक शब्दावली के अनुसार ये स्वयं ही स्वामी हैं तथा स्वयं ही सेवक। प्रचलित व्याख्याओं के अनुसार न तो इन्हें सरकारी स्वामित्व (Public Sector) तथा न तो निजी स्वामित्व (Private Sector) के तहत इन्हे रखा जा सकता है। फिर ये कहां रखे जायेंगे ? भारतवर्ष में एक तीसरे क्षेत्र का अस्तित्व रहा है जिसे हम जन स्वामित्व (People's Sector) कह सकते हैं। यह भारतीय समाज-रचना की अपनी मौलिक विशेषता रही है। इस मौलिक विशेषता को विस्मृतकर मई-दिवस को श्रम-दिवस के रूप में मनाना अपने राष्ट्रीय आत्म-सम्मान तथा आष्ट्रीय एकता के लिये चुनौती है।

अपने देश में श्रम तथा श्रमिकों की पूजा अपनी परम्परा रही है। इस परम्परा के महान् महत्त्व को बाद में स्वीकार करके जनता ने प्रथम श्रमिक विश्वकर्मा को परमात्मा के समान पूजा।

श्रमिकों के लिये विश्वकर्मा दिवस कार्य और कार्य के यंत्रों के महत्त्व तथा कार्यों में कुशलता के लिये समर्पण का यादगार है।

समाज के लिये यह दिवस ऐसे अवसर का बोध कराता है, जिससे कार्य में निहित देवत्व का सम्मान किया जाये और स्मरण किया जाये कि कैसे उपासना के रूप में किया गया कार्य भौतिक सम्पन्नता को उत्पन्न करता है, कर्मयोग की शिक्षा देता है तथा 'श्रम ही आराधना है' का मंत्र अंगीकार कराता है।

यह वह दिवस है जिस दिन राष्ट्र निर्माणकारी क्रियाओं में श्रम के स्थान की गणना की जाय और उस स्थान के महत्त्व के परिवर्द्धन तथा उन्नयन के लिये नये निश्चय निर्धारित किये जायें। यह वह दिवस है जिस दिन मनुष्य प्रकृति को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करे तथा उसके गुप्त नियमों और संयोगों का आह्वान करे, जिनमें असीम उत्पादन की क्षमता है।

विश्वकर्मा दिवस भारत का काल रहित दैवी भौतिकता का वह राष्ट्रीय दिवस है जो कि राष्ट्रीय उपासना में उत्पादन करता है और जिसका प्रतिफल निस्सीम संपदा है। इस दिवस के रूप में मजदूर क्षेत्र में हम अपनी राष्ट्रीय अस्मिताओं को जगायें गथा राष्ट्रीय परंपराओं के आदर का भाव श्रमिक क्षेत्र में भी निर्माण कर देश को सब प्रकार से समुन्नत करने का व्रत लें, संकल्प करें।

Genuine Trade Unionism

Manhar Bhai Mehta
Advocate
President, Bhartiya Mazdoor Sangh

The trade union unity is the need of the hour, in order to build up strong, powerful and well-organised trade union movement to fight against exploitative capitalists, to protect trade union rights and to bring pressure on government to change its anti-labour policies. Such Trade Union unity can be achieved only if the Trade Unions remain perfectly non-political, in character and abandon political unionism.

Political unionism envisages trade unions controlled and dominated by political parties or groups. Political party have not been controlling or dominating trade unions in the sense of exercising superior hierarchical powers vested in them by specific oraganisational compacts. But they have indeed been doing both, through control of trade union leadership by their own functionaries or agents. The union leaders supplied by the political organisations have been subject to party discipline and obedience to party policies; in some cases they have themselves been high up in the hierarchy of party leadership, which may be described as an "interlocking directorate". The political parties convert trade unions into their transmission belts. Such Trade Unions have remained formally independent of political parties that is, without developing organic or organisational relationships with them. Presumably, they have been governed by their own representatives in accordance with policies autonomously decided. But, in reality, they have been bound up with political parties intricately Virtually, the same results as would have obtained through affiliation, or other forms of organisational compacts making the unions subord nate to political parties, have been achieved by the fact that a great majority of the dominating union leaders have been primarily political agents with party axes to grind. The nerve-centres of trade union policy making and action have remained under control of the political functioneries subject to various degrees of party discipline. The unions are treated as more as a vehicle for the major political forces operating in the country than as an organisation for the expression of the aspirations of the workers In a sense, union is served as a "front" for the political

activities of various parties, though labour has derived incidental benefits from it.

The major trade union contres are, as they have always been, the creation and the tools of political parties and factions, Each of them has developed its own organisation at every lower level—regional, industrial, local—creating multiple unions and divided the workers. *This has led to organisational* weakness that the employers have not been reluctant to exploit for their own benefit. Multiplicity of unions has struck at the very roots of labour solidarity. Exploitation by political parties has led to structural disunity on a staggering scale. Rival unionism and structural fragmentation have resulted into inter-union and intraunion warfare, emplication of the issue of union recognisation and organisational weakness in the struggle for the Workers' economic and social progress. Thus, in the struggle for the control of labour, the union leaders fitted with political boots have trampeled the very bed of grass that they purportedly set out to develop into a garden, filled with many a luscious fruit. Pained by such evil consequences of political unionism, Shri S. R. Vasavda, the veteran INTUC leader and a Gandhian trade unionist remarked, "The trade union is a necessary instrument to save the workers from exploitation, but to make it affective the trade union must first be saved from exploitation."

The supreme consequence of political unionism has been the simple fact that trade unions have become pawns on the chess-board of politicsl. The trade union movement has developed no soul of its own, no labour-oriented out looks that did not have political holes shot through it, no organisation that could with stand pressures or resist interference from external sources, whether they be employers, political parties, or the government. Political unionism has prevented the development of a genuine labour movement or organisation that could be termed "the worker's own' and has turned the soil upside down to such a degree that it became almost impossible for a genuinely labour-inspired, labour-oriented, worker-led trade union movement to take root But such almost impossible and gigantic task has been successfully accomplished by B. M. S.

Before the rise of Bharatiya Mazdoor Sangh, the Indian labour field was dominated by political unionism. All the recognised Central Labour Organisations were the wings of different political parties or groups. But such political unionism is contrary to our Bharatiya traditions, inconsistent with democratic way of life, detrimental to organisation of workers' power and instrumental in glorifying the power of the state. B. M. S. therefore adhered to the principle of genuine trade unionism and kept *itself free from the* control, domination and hegemany of any political party. Hence, B. M. S. has to begin from the beginning On 23rd July 1955 there was not a single registered trade

union affiliated to it. The founder leader Shri Dattopant Thengadi devoted his entire energy and time to building up the organisation brick by brick assiduxusly and patiently. Its structure was evolved from the bottom and grew upwards and after full 12 years, All India office-bearers were elected for the first time. Its phenomenal growth and unique success in comparatively short period has unnerved the political trade unionists.

Such principled stand of B. M. S. and its honest implementation in practice by activists has paid rich dividends to B. M. S. Lakhs of workers has been attracted towards B. M. S. with full faith that their interests shall be perfectly safguarded and they will not be exploited for political purposes. The workers are convinced by personal experience that B. M. S. leaders are non-political, genuine, idealistic and dedicated. They are above politics, partism political or power politics. They have no political ambition to become M. L. A. or M. P. etc. They do not issue any directives on behalf of B.M.S. on elections or about voting. They have no vestad interest in the actual conduct of trade union affairs. They are devoting all their energiles exclusively to the labour field with missionary zeal for the material and moral progress of the workers. Such leaders, who regard underprivileged, undernourished and exploited workers as gods worthy of worship, cannot be considered as "Outsiders". They are the pioneers of the new labour movement based on genuine trade unionism, that is, an organisation of the workers, for the workers and by the workers.

Gandhiji believed in genuine trade unionism and was opposed to the infusion of politics into trade unionism. He declared, "I have not......the remotest idea of exploiting labour or organising it for any direct political power. Labour, in my opinion, must not become a pawn in the hands of the politician on the political chessboard. It must, by its sheer strength, dominate the chessbord." Let us fulfill the wishes of Mahatmaji and build up dominating strength of the labour on the basis of independent, powerful, militant and united trade union movement. ●

---

१७ सितम्बर–विश्वकर्मा दिवस

राष्ट्रीय श्रम दिवस

"कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः ।"

—इशावास्योपनिषद्

"Let us perform our duties & live hundred years."

—Ishawasyopanishad

National Policy For Computer Use

By **G. Prabhakar**
Organising, Secretary, B. M. S.

Two news which appeared in the daily news papers in the month of May, 1984, thongh seem very ordinary suparficiously, deserve more serious attention. The first was published on May, 5, from Bangalore. It was about a robot which Bharat Electronic Ltd., had indegenously devised and developed which could be "used in the production process". It is said to be capable of being "used in assembly line operations". The news item further added that "the design lends itself to further improvements, by adding more functions, if needed". The second news item, published on May, 14, again from Bangalore, was captioned "NAL gets modern computer unit". This "largest and the latest computer system in the country" was inaugurated at the National Aeronautical Laboratory by Shri Shivaraj V. Patil, Union Minister of State for Science and Technology. In his speech he is reported to have said that "in India, it was thought that they (computers) would reduce employment potential and there was resistance to its induction. But it was now being realised that computers would not reduce the employment potential but might increase it......and they would be introduced in all fields of activity". Dr. R. Srinivasan head, Computer Centre, in his speech on the same occasion, is reported to have said, "the computer system costing Rs. 1´0 lakhs was imported from the U. S. Besides scientific jobs, the computer system would carry out routine jobs in administration, accounts stores".

These two news items portend the imminent and immediate advanced technological invasion of our country. Already micro-processors are very much there in L. I. C. of India, big and small computers are being installed in all the major Banks. In the transport, tele-communication newspaper, Electricity and other similar industries highly advanced technology based on micro-electronics is being ushered in. Even in production units they are making their appearance as the BEL news item discloses. India is being caught in the Third Wave. Possibly this cannot be averted.

But this second industrial revolution is going to have far reaching and wider and deeper impact and consequences than any of the earlier changes had. And therefore it is imperative that the society should be

made aware of these consequences and better equipped to receive them. Similarly it would be wise to regulate the onslaught of computerisation as otherwise in its wake it could cause lot of damage which could be avoided with proper planning and regulation.

Many things are said in favour of this change, that it would eliminate time lag, increase efficiency hundred fold, help mass production, ensure quality, reduce cost and so on. May be most of it is true to a great extent But protoganists of computerisation rather give a blind eye to its ill effects. Everyone is eager to expleain what it does for the people, but as Thomas R. Donature, Executive Assistant to the President, AFL-CIO of USA remarked, our concern must be "what it does to the people"–to the millions of people who are in the industry no working and millions more who every year are waiting to enter the industries and service institutions.

Shri Shivaraj Patil, expressed the hope that "computers would not reduce the employment potential but might increase it". But the BEL robot taking over the assembly lines and the NAL computer doing not only scientific job but even routine jobs in administration, accounts and stores as stated by Dr. R. Srinivasan, does point to the possibility of displacing the present employees doing these routine jobs.

What is the effect of these changes in the adanced countries ? Are the workers there happy with the application of the most modern technologies ? In 1979, alarmed at the ill effects the present technology is having on the workers, the AFL-CIO, conducted a seminar on "The impacts of Technological change on the workplace". In the report of the seminar published, following experiences are narrated which prompted the Trade Union to conduct the said seminar. "While modern technological advances have contributed enormously to the enhancement of our lifestyles, they are also taking their toll at the workplace. A new electronic devise hailed as a time saver by a plant manager, may also result in massive unemployment. As machines become obsolete because of such advances, so do their operators.........Manpower requirements may be drastically reduced or perhaps eliminated entirely"

The Japanese workers initially enthusiastically welcomed computers and robots. But according to a recent report published in the Economic Times they are having second thoughts now as they are finding to their dismay that the average age of the worker in the industry is increasing and the age old life long employment culture of Japan is being affected. Hence they have become alert and are insisting on regulatory clauses in agreements on the question of use of computers.

Recent reports on West Germany indicate that unemployment figures are all time

high—10% of the labour force and the resulting unrest among the industrial labour is adversely affecting the German Economy. The workers are claiming for 35 hour week.

During a seminar on Transport Policy held recently at New Delhi under the guidance of the International Transport worker's Federation, this author tried to draw the attention of the participants on the consequences of computerisation on the Transport Industries. Intervening immediately after his speech, Mr. M. S. Hoda of ITF, London, remarked that the Technological invasion had a very adverse impact even on the industrially advanced Europe, where labour is scarce and capital is in plenty. What consequences it would befall on a country like India where labour was in abundance and capital scarce can only be imagined.

Mr. Adam Osborne, an expert in electronic engineering, in his classic book "Running Wild" has predicted, "of all jobs held in 1978, perhaps fifty per cent could be eliminated during the next twenty five years". This forecast is based on the analysis published by the American Bureau of Labour Statistics in September, 1978.

In our own country where unemployment is very high, technological havoc can not probably be controlled or minimised. India Today write up on the Tata Iron and Steel Company Ltd. (TISCO) of Jamshedpur (May 15, 1984) sheds light on the shape of things to come. Says the article: "Company estimates that the integrated steel plant can be run with 52,000 employees instead of the present 65,000". So 13,000 employees or 20% have become surplus and will become a prey to the technology change.

It is argued that this change will create new jobs too. Yes. But how many ? According to Mr. Osborne at 10% new jobs may come into existence in place of 50% that will stand eliminated.

I donot intend to draw a frightful picture. In an over enthusiam to welcome with both arms advanced technology because of its attractive and astonishing results, we are turning a Nelson's eye on the effects it would have on the working population. This aspect should not be overlooked. This underscores, the necessity of formulation of a National Policy on Technology. This should be necessarily preceeded by a National Debate and a Conference of all interests to evolve a consensus to become the basis for this national policy.

It may be recalled here that the Governament of India had appointed a "Committee on Automation" with Prof. V. M. Dandekar as its Chairman which had submitted its report in May, 1972. Some of its recommendations included, determination of specific areas or fields in which use of computers may be permitted or restricted, constitution of a panel of experts to evaluate and assess the justification reports to be sub-

mitted by employers who wish to opt for computers and the right of say to trade unions in the matter. Every employer intending to utilise computer service was required by the committee recommendations to give reasons why the job cannot be done without resort to a computer. Government has probably not even considered this report. If necessary another national level commission be set up to go into this matter.

There is no question of blind opposition to this technology. There are fields where its use is a must. But to avoid indiscriminate use which may adversely affect our economy and especially to cushion its ill effects on employment position, firm guidelines need be formulated. As the AFL-CIO report says, "The time is now for trade unionists, for government, for industry—to develop a strategy for dealing with technological change in a creative manner that minimises injury, and maximises the accommodation of technology to people, and people to technology, while providing the benefits of technological advances to a better world for all people."

●

मजदूर की मांग केवल एक !

"मैं मनुष्य हूं, मनुष्य के नाते जिन्दा रहने का हमारा हक है।"

जिस समय मजदूर अपना मांग पत्र प्रस्तुत करता है, लोगों को देखने में प्रतीत होता है कि ३० या ४० मांगे हैं। लेकिन वास्तव में देखा जाय तो कुल मिलाकर उसकी एक ही मांग है, जो हर एक मनुष्य की है। वह मांग क्या है ? वह मांग है•• "मैं मनुष्य हूँ, और मनुष्य के नाते जिन्दा रहने का मुझे हक चाहिये।" इस एक ही बात को वह अलग-अलग ढंग से कहता है। यदि मनुष्य के नाते मुझे जिन्दा रहना है तो कौन-सी बातें आवश्यक है ?

सबसे पहले कुछ न कुछ रोटी का इन्तजाम होना चाहिए। अर्थात् रोटी के लिए हमें काम मिलना चाहिए। इसीलिए भारतीय मजदूर संघ ने Right to Work की मांग की है। काम करने का हक-मौलिक अधिकार अर्थात् बुनियादी हक होना चाहिए। इस देश में जो पैदा हुआ है, उसको काम मिलना ही चाहिए। उसे काम दिलाना समाज और सरकार का कर्तव्य है। जैसे काम चाहिए वैसे ही काम की सुरक्षा भी चाहिए।

—दत्तोपंत ठेंगड़ी

मजदूर नेता कैसे हों ?

श्री चनरेश सिंह, भू० पू० विधायक
उपाध्यक्ष, भारतीय मजदूर संघ

राजनीति ने जीवन के हर क्षेत्र को न केवल प्रभावित किया है, अपितु प्रदूषित कर दिया है। किसान, छात्र, विधिवेत्ता, व्यवसायी, मजदूर सभी को यह सार्वदेशिक हवा निरंतर लगती है, तथा उनमें इसके प्रति सहज झुकाव भी हो जाता है। मजदूर जगत इससे सर्वाधिक प्रभावित है। जिस प्रकार राजनीति में राजनीतिक वेषधारी ऐसे अनेक सज्जन दिखायी देते हैं, जिन्हें राजनीति का 'क' 'ख' 'ग' पता नहीं उसी प्रकार बढ़ती औद्योगिक समस्या, बेरोजगारी, सरमायेदार और सरकार का उत्पीड़न, आपसी वैमत्य का कारण है कि मजदूर क्षेत्र में तमाम नेता अकस्मात ही उग आये हैं, या आते हैं। इनसे राहत कम आफत अधिक मिलती है। इनकी नीति स्पष्ट नहीं हो पाती और नीमहकीम की कहावत चरितार्थ होती है। यह बात सही है कि learning by doing अच्छी स्थिति है, पर इस आरोहण में कई गरीब मजदूर आहत हो जाते हैं।

तब यह प्रश्न उठता है कि एक मजदूर क्षेत्र में कार्यरत श्रमिक कार्यकर्त्ता को कुछ मौलिक बातों पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये, जो मूलतः किसी भी विवाद, समझौता, वार्त्ता या औद्योगिक अशांति के समय काम आते हैं, या उससे उत्पादन वृद्धि, क्षमता वृद्धि होती है। आज मजदूर संगठन विभिन्न राजनीतिक खेमों में बटे हैं। उनके कार्यकर्त्तों के लिये उस दल की निर्धारित नीति के आलोक में समस्याओं के निदान की बाध्यता है, पर यह सर्वमान्य और लोकहित में हो ऐसा सुस्पष्ट नहीं है। इसीलिये आज आवश्यकता है ट्रेडयूनियन कान्ससनेस की जिसका आधार राष्ट्रीयता और माध्यम जेनुइन ट्रेड यूनियनिज्म हो। इस क्षेत्र में सेल्फ कान्ससनेस का अभाव भी जिम्मेदार है "राजनीतिक श्रमसंघ" का। ऐसी स्थिति में अपनी समस्याओं के कुशल निदान के लिये मजदूर और उनके बीच से उभरी नेतृत्व क्षमता दोनों में Trade Union consciousness पहली शर्त बन गयी है।

अब इसका महत्त्वपूर्ण विन्दु जो हर मजदूर संघ कार्यकर्त्ता या नेता के लिये आवश्यक है, वह है समस्याओं की परख, उनके निदान का मार्ग और समझौता को संगठन हित में उपयोग करने की क्षमता। इन सब मौलिक कार्यों के लिये निम्न गुण प्रथम स्तर पर परमावश्यक हैं :—

1. श्रम अधिनियमों के अन्तर्गत श्रमिकों के अधिकार एवं दायित्वों की स्पष्ट और व्याख्यात्मक जानकारी।
2. समस्याओं के निदान निकालने की सामूहिक विधि का ज्ञान, उसका उपयोग और संतुष्ट करने की क्षमता।
3. मजदूर और प्रबंधन के बीच राष्ट्रहित, उद्योगहित और मजदूर हित में समंजन की योग्यता।
4. मधुरभाषी, सामान्य रहन-सहन, समरस होने की क्षमता तथा कथनी और करनी में ऐक्य।
5. हीन भावना का शिकार नहीं होना।
6. इस बात को ध्यान में रखना कि हम व्यक्तिगत नहीं अपितु सामूहिक सौदेबाजी करने जा रहे हैं।

7. नेतृत्व को सामूहिक परिवेश देना न कि वैयक्तिक।

इसी प्रकार एक कुशल मजदूर नेता के लिये विवादों के निष्पादन अर्थात ग्रिवान्स पर वार्त्ता, समझौता, या अन्य प्रकार से विचार करते समय भी विशेष सतर्कता की आवश्यकता होती है। इसके लिए जरुरी है कि :—

1. आप प्रबंधन और मजदूर दोनो के समक्ष कुशल वक्ता और श्रोता दोनो हों।
2. अपने सदस्यों में पूर्ण विश्वास रखें तथा उनका विश्वास जीतें।
3. अपने सदस्यों को सभी सूचनायें दें तथा उनसे पूर्ण इमानदारी बरतें।
4. परोक्ष में समझौता नहीं करें और न समस्या को नजर अंदाज करें।
5. मुगालते में नहीं रखें अन्यथा विश्वसनीयता घटेगी।
6. नम्र और दृढ़ बने तथा धैर्य नहीं खोयें।
7. अपनी सदस्यता जाने तथा सभी को सामूहिक सौदेबाजी के आधार पर समस्याओं के हल के लिये पहल करें।
8. समस्याओं की पूर्ण जानकारी रखें तथा समस्याग्रस्त मजदूर या मजदूरों को आप में विश्वास बनी रहे तथा आप सफल होंगे, ऐसा विश्वास रहे।
9. व्यक्तिगत विद्वेष या पूर्वाग्रह कभी न पालें।
10. सभी वार्त्ता के पूर्व और पश्चात् मजदूरों को सही स्थिति की जानकारी दे दें तथा भरसक शीघ्र निष्पादन में विश्वास रखें।

मजदूर नेता को व्यक्तिगत या सामूहिक शिकायत का निराकरण निकालना पड़ता है। किसी भी प्रकार प्रबंधन द्वारा मजदूर हित का अवलंघन या ऐसा करने की मंशा प्रत्यक्षत: या परोक्षत: शिकायत का विन्दु बन जाती है। Any real or imaginary feeling of personal injustice which an employee has concerning his employer relationship. अब नेता होने के नाते इसका निदान निकालना धर्म बन जाता है। देखना यह चाहिये कि मजदूर या मजदूरों के अधिकार कहांतक प्रबंधन द्वारा अवलंघित हैं। इसके बाद की स्थिति बनती है कि आप किस हदतक इसके निदान में सक्षम हैं, और यह सक्षम होना अनेक बातों पर निर्भर करती है। देखना यह भी चाहिये कि कौन शिकायत विवाद बन सकती है तथा कौन शिकायत इसके परे है। अन्यथा पुनः समझौता में परेशानी होती है। मजदूर की व्यक्तिगत समस्या, दूसरे श्रमिकों के साथ विवाद, अन्य निकायों के बारे में शिकायत नहीं बन पाती। अत: यूनियन के नेताओं को इन बातों में अनावश्यक शक्ति वर्वाद नहीं करनी चाहिये।

अब यह भी देख लें कि किसे ग्रिवान्स या शिकायत नियमों के मातहत कह सकते हैं। मूलत: वे निम्न प्रकार हैं :—वेतन संबंधी शिकायत, अनुचित कार्यभार, मजदूरों का पदस्थापन, अनुशासनिक कारवाई, कार्यदशायें, निरीक्षकों द्वारा अधिकार का अतिक्रमण, व्यक्तिगत अधिकार का हनन, श्रमिक संघ अधिकारों का हनन, श्रम कानूनों के प्रावधानों का उल्लंघन, सौदेवाजी का हनन, प्रबंधन द्वारा दायित्वों के निर्वहन में उदासीनता आदि। अत: मूलत: शिकायतों को तीन हिस्से में बांटा जा सकता है—जो मूलाधिकारों के हनन से संबद्ध हो—मौलिक शिकायते, सामूहिक निर्णय या समझौते से उत्पन्न शिकायत को आर्थिक शिकायत तथा ट्रेडयूनियन अधिकारों के विरुद्ध शिकायतों को—संगठनात्मक शिकायतें।

यह संगठन क्षमता और मजदूर नेता के वैयक्तिक गुणों पर, व्यवहार कुशलता पर निर्भर होता है कि वह वैयक्तिक या सामूहिक शिकायतों का हल कैसे निकालता है। इसी के साथ यह भी आवश्यक है कि मजदूर नेता मजदूर क्षेत्र के बाहर भी अपनी प्रामाणिकता और ध्येय निष्ठा का परिचय आचरण से दें, तभी वह सरमायेदारों एवं सरकार के अन्याय या शोषण के विरुद्ध सामूहिक नेतृत्व कर सकता है।

●

उत्पादकता एवं श्रमिक संघ

रामदेव प्रसाद
महासचिव, भारतीय मजदूर संघ
उपाध्यक्ष, उत्पादकता परिषद्

राष्ट्रीय आर्थिक विकास की अपेक्षित प्रगति न होने के अनेक प्रभावी कारणों में उत्पादकता वृद्धि एक महत्त्वपूर्ण कारण है। आजादी के चौथे दशक में भी सभी आर्थिक पक्षों में सम्यक जागृति या राष्ट्रीय चरित्र के अभाव से हम जहां गरीबी रेखा के नीचे जीने को वाध्य हैं, वहीं दूसरे देश समृद्धि के चरम पर पहुँच रहे हैं। इसके लिए योजनाओं का समय सीमा में अकार्यान्वयन, अशिक्षा, अवाधगति से बढ़ती जन-संख्या, आर्थिक क्षेत्रों में एकाधिकार वर्ग का प्रभुत्व, सत्ताभिमुख राज-नीति जहां अधिक जिम्मेवार है, वहीं विविध कारणों से उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि का अभाव भी उपयुक्त कारणवश कम जिम्मेबार नहीं है।

विडम्बना यह है कि आज भी हमारी अधिसंख्य जनता यह नहीं जानती कि उत्पादन और उत्पाद-कता में भिन्नता क्या है। किन-किन उपायों से समान पूंजी, परिवेश में उत्पादकता की वृद्धि की जा सकती है। उदाहाणार्थ कृषि कार्य में ही परम्परागत ढंग से व्यवहृत साधनों से हम १० से १५ प्रतिशत तक कृषि उत्पादन को विनष्ट कर देते हैं। यहीतक नहीं तैयार अन्न भी उचित संरक्षण के अभाव में सड़-गल जाता है, कीड़े खा जाते हैं।

उत्पादकता क्या है ?

उत्पत्ति (output) और निविष्टी (Input) का अनुपात हीं उत्पादकता है। अर्थात साधनों पर होनेवाले खर्च के मूल्य और उत्पा न के मूल्य के अनुपात, समय, साधन और श्रम की वर्वादी को रोकने, कम-से-कम लागत में अधिक-से-अधिक तथा उत्तम उत्पादन, वितरण में सुव्यवस्था लाने, कुशलतापूर्वक कार्य निर्वहन को हम उत्पादकता की संज्ञा दे सकते हैं। किसी भी उद्योग में वांछित उत्पादन, मनुष्यों, मशीनों और सामग्री अर्थात

पटना उत्पादकता परिषद् द्वारा आयोजित एक दिवसीय सेमिनार। बांये से—श्रीमती प्रभावती गुप्ता, श्रम मंत्री, बिहार, श्री रामदेव प्रसाद, महासचिव, भा० म० सं० एवं श्री आर० नाथ सेवा निवृत्त भा० प्र० से०, सचिव।

पूंजी, पसीना और प्रबंधन की आपसी क्रियाओं का समुच्चय होता है। इनकी दक्षता, कुशलता सुरक्षा और समुचित उपयोग से उत्पादकता (Productivity) बढ़ सकती है। उदाहरणार्थ १०० मजदूर किसी कारखाने में ८ घंटा काम कर समान कच्चे माल से ५००० मीटर स्टील सीट तैयार करते हैं, अपितु दूसरे संस्थान में इन्हीं साधनों से ६००० मीटर सीट तैयार होती है। निश्चय हीं उत्पादकता वृद्धि का उदाहरण है। अब देखना है कि कौन-सी शर्तें किस हद तक इसके लिए किस आर्थिक पक्ष को अधिक प्रभावी बनाती हैं।

उत्पादकता का महत्त्व व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में स्पष्ट है। इसी के आधार पर हमारी समृद्धि निर्भर करती है। विश्व के जिन देशों ने आर्थिक क्षेत्र में प्रगति की है, उनका इतिहास उत्पादकता वृद्धि का रहा है। विशेषकर अर्द्ध विकसित देशों में वर्त्तमान अन्तराष्ट्रीय बाजार में स्पर्धा और देश की आर्थिक समृद्धि के लिए उत्पादकता वृद्धि परमावश्यक है। नागरिक जीवन में भी व्यक्तिगत और समष्टिगत हित साधन के लिए यही एकमेव मार्ग है। परन्तु दुर्भाग्यवश हमारे सोचने का ढंग बदल गया है। व्यक्तिगत हित साधन ने समष्टि के हित को निगल लिया है। प्रतिफल है कि अर्थ के केन्द्रीयकरण के साथ-साथ गरीबी रेखा के नीचे जीने वालों की संख्या अबाधगति से बढ रही है। सभी हित पक्षों में टकराव है तथा राजनीति ने इस दूरी को और बढ़ा दिया है। संबंधों में दरार है, या आर्थिकता ने ऊँच-नीच की लकीर खींच दी है। असुरक्षा के कारण तन्मयता नहीं आती और परस्पर ऐक्य होने का वातावरण नहीं बनता। दृष्टिकोण का अन्तर भी इसके लिए जिम्मेवार है।

उत्पादकता एवं श्रमिक :

सभी आर्थिक हित पक्षों की तरह श्रमिक उत्पादन और उत्पादकता का एक मूर्धन्य घटक है। मजदूरों द्वारा कुशलतापूर्वक, अभिनव तकनीकों के उपयोग के साथ उत्पादकता वृद्धि के ही कारण पाश्चात्य देशों में आर्थिक या वैयक्तिक समृद्धि आयी है।

उदाहरणार्थ नीचे का ब्योरा कतिपय देशों की उत्पादकता वृद्धि के संदर्भ में देखा जा सकता है।

(वार्षिक वृद्धि)

	१९६०-७३	१९७३-७८
जापान	१०·२	५·७
अमेरिका	३२	२२
प० जर्मनी	५५	५६
भारत	०·३४	०·३२

परन्तु इसके लिए केवल श्रमिक पक्ष उत्तरदायी नहीं है। अपितु सभी आर्थिक पक्ष समान रूप से जिम्मेवार हैं। श्रम उत्पादकता किसी उत्पादन इकाई (उद्योग, कम्पनी, संकाय, विभाग) का समग्र उत्पादन और उसमें लगी शक्ति, साधन के बीच के संबंध को व्यक्त करती है। यह निर्विवाद है कि उत्पादकता वृद्धि में मजदूरों एवं मजदूर संगठनों का बहुत बड़ा हाथ है। इसके लिए अनेक तत्त्व को प्रभावी बनाकर उत्पादकता वृद्धि की जा सकती है और इसमें मजदूरों की भूमिका अग्रणी हो सकती है।

इसी संदर्भ में वर्षों पूर्व १९, २० अगस्त १९७३ को राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् द्वारा आयोजित उत्पादकता तथा श्रमिक संघ विषयक सेमिनार के निर्णय ऐतिहासिक महत्त्व रखते हैं, जिनका समर्थन भारतीय मजदूर संघ सहित देश की प्रमुख राष्ट्रीय श्रम संगठनों ने किया था। सेमिनार में सभी राष्ट्रीय हित पक्षों के साथ उत्पादकता वृद्धि की आवश्यकता को स्वीकारा गया था। यह भी निर्णय किया गया था कि श्रमिक उत्पादकता का प्रभावी उपयोग प्रबंधन एवं सरकार द्वारा निर्मित अनुकूल वातावरण में ही हो सकता है।

श्रमिकों में आशंका :

परन्तु सरकार और प्रबंधन की नीतियों ने श्रमिकों के मन में उत्पादकता वृद्धि में कतिपय संदेह को बल दिया है। कार्य-भार में वृद्धि, मशीनीकरण का दुष्प्रभाव उत्पादकता के लाभों के वितरण को लेकर उत्पन्न संदेह के पीछे चाहे जो भी कारण हो पर उसे नकारा नहीं जा सकता। उत्पादकता वृद्धि के संदर्भ में यह राष्ट्रीय नीति होनी चाहिए कि सघन आबादी वाले इस देश में श्रमिकों

को खतरे में डालकर उत्पादकता प्राप्त नहीं की जा सकती और ऐसे किसी भी उत्पादकता की सिफारिश नहीं कि जानी चाहिए, जिसके कारण छँटनी आदि का अवसर आये। इस संदर्भ में यह आवश्यक है कि राष्ट्रीय सहमति के संदर्भ में उत्पादकता वृद्धि के लिए सरकार और प्रबंधन यह स्पष्ट करें कि उत्पादकता वृद्धि के कारण (जैसी की शंका है) कोई पक्ष दुस्प्रभावित नहीं होगा।

इसके अतिरिक्त अनेक विन्दु हैं जो श्रमिक उत्पादकता के लिए आवश्यक हैं।

राष्ट्रीयचरित्र (national character) :—

आर्थिक क्षेत्र में सर्वाधिक बाधा राष्ट्रीय चरित्र के अभाव के कारण है। अर्थ प्रधान व्यवस्था में money first and nation last हो गया है। राष्ट्रीय क्षति को कोई अपनी क्षति नहीं मानता। इसके उदाहरण सर्वत्र देखने को मिलते हैं। सामूहिक उत्तरदायित्व का अभाव राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में दिनानुदिन होते जा रहा है। आज भारत के नियोजक जीवन रक्षक दवाइयों में भी मिलावट करते हैं, डालडा में पशुओं की चर्बिया मिलाते हैं। इतना ही नहीं उत्पादन बढ़ जाने पर विभिन्न हथकंडों से कारखानों में (lay off) तालाबंदी या अन्य प्रतिकारक उपाय अपनाते हैं। उत्पादकता वृद्धि में बम्बई टेक्सटाइल मिलों में उत्पन्न स्थिति से सभी परिचित हैं। इसी प्रकार राजनीतिक सौदेबाजी में भी उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्त्व विद्यमान हैं। आज सत्ता के Short Cut ने गरीबों और अमीरों को एक दूसरे से संरक्षण के लिए एक ही साथ आश्वाशन दे रखा है। सत्ता के लिए वोट चाहिए जो गरीबों के पास हैं और इसको लेने का माध्यम नोट है, जो अमीरों के पास हैं। पैसा देने वाले का अपना निहित स्वार्थ होता है। इसके चलते उसको आर्थिक लाभ पहुँचाना पड़ता है। फलतः नीचे का गरीब मजदूर, किसान शोषण का शिकार हो जाता है और उनकी उत्पादकता वृद्धि का अर्थ तथा उपयोग नियोजकों के हित में हो जाता है।

उत्पादकता एवं बेरोजगारी :—

विकसित देशों के साथ अर्द्ध विकसित या अविकसित देशों की उत्पादकता का साम्य नहीं किया जा सकता है। इसी प्रकार अधिकतम जनसंख्या वाले भारत और विकसित पश्चिमी देशों या रूस और जापान के साथ तुलना नहीं की जा सकती है। दोनों के परिवेश भिन्न हैं। जहाँ पश्चिमी देशों में कम-से-कम श्रमिकों द्वारा उन्नत तकनिकों के आधार पर अधिकतम उत्पादन हो रहा है, वहीं अपने देश में अधिकतम मानव शक्ति, सामान्य तकनीक एवं न्यूनतम साधन के आधार पर अधिकतम उत्पादन की आवश्यकता है।

Robort की आवश्यकता जहाँ अपने देश में बिल्कुल नहीं है, वहीं Computerisation के पूर्ण विचार कर हीं उपयोग की आवश्यकता है। मशीनीकरण के अन्धानुकरण से भारतीय अर्थ व्यवस्था बिगड़ जाएगी। इसलिए न तो हम रूस की उत्पादकता को उसी परिवेश में लागू कर सकते हैं और न जापान की। अपितु हमें देश की ७० करोड़ अशिक्षित, बेरोजगार, गरीब किसान जनता को रोजी-रोटी देनेवाली अभिनवीकरण को उत्पादकता वृद्धि के संदर्भ में अपनाना होगा। ठीक आज अपने देश में केवल २६ करोड़ लोग काम कर पाते हैं। जिनमें संगठित क्षेत्रों में केवल २·६ करोड़ लोग ही हैं। शेष असंगठित क्षेत्रों अर्थात् खेतिहर मजदूर, दैनिक मजदूर, अर्द्ध नियोजित या अल्पनियोजित ही है। सगठित क्षेत्रों में भी १० प्रतिशत लोग वैसे हैं जो कहीं-न-कहीं से प्रबंधन से जुड़े हुए हैं। अतः आज आवश्यकता है अधिकतम उत्पादन के लिए अधिकतम श्रम शक्ति के उपयोग की। भारत की सरकार तो बेरोजगारों की सही गणना में भी असमर्थ है, जबकि जापान आदि औद्योगिक देशों में बेरोजगारी भत्ता भी अपने राष्ट्रीय प्रति व्यक्ति आय से अधिक है।

औद्योगिक सम्बन्ध :—

श्रमिक संघों की उत्पादकता के संदर्भ में औद्योगिक सम्बन्ध का बहुत बड़ा महत्त्व है। बिगड़ता औद्योगिक सम्बन्ध अर्थ तंत्र को झकझोर रहा है, जिसका प्रभाव सबसे अधिक मजदूरों पर पड़ रहा है। आज नियोजक

और नियोजित का सम्बन्ध मालिक और नौकर का बन गया है। एक सामान्य अभियन्ता या foreman अपने अधीनस्थ कामगार को नीच दृष्टि से देखता है। एक नियोजक जो सिर्फ पूँजी निवेश करता है अपने मुख्य अभियन्ता को भी अपना नौकर समझता है। इसे आदर्श कल्पना नहीं कही जा सकती है। आज पारिवारिक सम्बन्ध की आवश्यकता है।

सरकार ने मजदूरों के हित में प्रबंधकों की सांठगांठ से कानूनों की जाल तो बिछा दी है, परन्तु उनको कारगर करने के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया गया है। वहीं नासा और एश्मा जैसा कानून मजदूरों पर लगाया जाताहै। ताला बंदी, ले-ऑफ, छँटनी आदि विभिन्न उपकरण ऐसे हैं, जिनसे मजदूर बुरी तरह आक्रांत है। इसी प्रकार औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए प्रबंधन द्वारा कोई विशेष पहल की अनिवार्यता भी नहीं है। औद्योगिक विवादों की स्थिति में शीघ्र समाधान के लिए कोई सम्यक माध्यम नहीं बन पाया है। इससे सामूहिक सौदेबाजी को आघात पहुँचता है। कार्य दिनों की क्षति होती है तथा उत्पादकता ह्रास होती है।

प्रबंध में श्रमिकों की भागीदारी :—

औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार और श्रमिक उत्पादकता वृद्धि के लिए प्रबंध में श्रमिकों की साझेदारी परमावश्यक है। इस दिशा में हुये प्रयोगों का भी वही हश्र हुआ है। प्रबंधन एवं सेवायोजक इसे जितनी गंभीरता से लेंगे और व्यापक बनायेंगे उतना हीं अनुकूल परिणाम निकलेगा आज आवश्यकता है—Nationalise the labour, Labourise the Industry and Industrialise the Nation की। इस प्रकार की आदर्श कल्पना के अनुकूल अगर genuine Trade Union को प्रबंधन में साझेदारी केवल दिखावें के लिए नहीं अपितु नीति निर्धारण से लेकर बैलेंस सीट देखने तक अधिकार सहित दिया जाय तो उत्पादकता वृद्धि में परम सहायक होगा। प्रबंधकों के अधिकार सीमा में अतिक्रमण और ट्रेड युनियनों की विश्वसनीयता ये दोनों बातें शंका के रूप में आती हैं, पर ये निर्मूल हैं।

गैर राजनीतिक श्रम संगठन (genuine Trade Union)—

उत्पादकता वृद्धि के लिए जहाँ प्रबंधन एवं सरकारी नीतियों में परिवर्तन एवं कुशल कार्यान्वयन की आवश्यकता है, वहीं श्रमिक संघों में राष्ट्रीय भावना सहित "देश के हित में करेंगे काम, काम का लेंगे पूरा दाम" की मानसिकता आवश्यक है राजनीतिक मुखौटा में कार्यरत युनियनों के सामने दल प्रथम, श्रमिक, उद्योग या राष्ट्र गौड़ हो जाता है। इसके साथ-साथ श्रमिकों में वास्तविक ट्रेड युनियन कान्सनेस (जागरण) एवं अधिकार के लिए कर्त्तव्य का बोध जरुरी है। आज के संदर्भ में यूनियनों का For the labour, by the labour and of the labour चरित्र परमावश्यक है। इस दशा में मजदूरों के लिए राष्ट्रीय संदर्भ में उद्योग की रक्षा करते हुये अर्थात् राष्ट्र हित, उद्योग हित, मजदूर हित साधन हो सकता है। श्रम संगठनों में फैले परकीय भावों को निकालना होगा। जिनकी जगह राष्ट्रीय भावना और कर्त्तव्य बोध ले सके। इसके लिए व्यापक शिक्षा की जरुरत है।

आदर्श व्यवस्था के लिए अन्य आवश्यक तत्व :—

इसके साथ ही कुल उत्पादन में श्रमिकों का हिस्सा शिकायतों का शीघ्र निवारण, सुझाव योजना, पुरस्कार, कुशल प्रशिक्षण एवं नयी तकनीकों की ग्राह्यता बढ़ाने की प्रेरणा, ठेका पद्धति का निवारण, आर्थिक सामंजस्य हेतु औद्योगिक उत्पादन एवं कृषि उत्पादन मूल्य में साम्य, बेरोजगारी उन्मूलन हेतु ठोस कदम, कार्य दशाओं में सुधार, देश भक्ति की प्रेरणा श्रमिकों में जगाना उत्पादकता वृद्धि हेतु आवश्यक है। इसी प्रकार प्रबंधन के लिए भी राष्ट्रीय संदर्भ में आचार संहिता बनाना, अनुत्पादक मदों पर व्यय रोकना, पारिवारिक सम्बन्ध बनाना तथा राजनीतिक शोषण से मुक्ति कम जरुरी नहीं है। उत्तरोत्तर एक उद्योग में एक युनियन या बहुमत को मान्यता देने की स्थिति पर भी विचार करना लोक हित में होगा। तभी अधिक उत्पादन वृद्धि के साथ-साथ उत्पादकता वृद्धि की अपेक्षित गति प्राप्त की जा सकती है। ★

सरकार द्वारा सत्यापन के आधार पर राष्ट्रीय श्रम संगठनों की स्थिति

(आधार वर्ष–1980)

श्रम संगठन	सत्यापित सदस्यता	श्रम संगठन	सत्यापित सदस्यता
इन्टुक	1886440	एन० एल० ओ०	238017
भारतीय मजदूर संघ	959763	यू० टी० यू० सी० (ले० स०)	117031
एच० एम० एस०	451167	यू० टी० यू० सी०	35384
ऐटुक	344746	टी० यू० सी० सी०	14570
सीटू	331031	एन० एफ० आई० टी० यू०	13630

सरकार द्वारा सत्यापन के आधार पर बिहार में श्रम संगठनों की स्थिति (1980)

संगठन	युनियनों का दावा	सदस्यता का दावा	सत्यापित युनियन	सत्यापित सदस्यता
इटुक	132	256019	77	2163313
भारतीय मजदूर संघ	96	207938	82	157298
एच० एम० एस०	78	139776	27	28955
ऐटुक	85	108187	56	199 8
सीटू	40	30454	27	7048
यू० टी० यू० सी० (ले० स०)		177795		11211
यू० टी० यू० सी०		76112		3497

केन्द्रीय श्रमायुक्त द्वारा मई '84 में घोषित केन्द्रीय श्रम संगठनों की सदस्यता के अनुसार भारतीय मजदूर संघ अखिल भारतीय श्रम संगठनों में इंटक के बाद दूसरे स्थान पर है तथा 8 राज्यों व 10 उद्योगों में प्रथम स्थान पर है।

प्रथम स्थान : उत्तर प्रदेश, दिल्ली, हरियाणा, चण्डीगढ़, पंजाब, हिमाचल, जम्मू काश्मीर तथा राजस्थान।

द्वितीय स्थान : आसाम, बिहार, कर्नाटक एवं मध्य प्रदेश।

तृतीय स्थान : महाराष्ट्र (विदर्भ सम्मिलित है)

चतुर्थ स्थान : गुजरात, केरल तथा पश्चिम बंगाल।

प्रथम स्थान : रेलवे, डाक तार, विद्युत, सिवि० इन्जी० व पब्लिक वर्क्स, टेनरीज व लेदर, स्वायत्त संस्थायें, परसनल सर्विसेज, बैंक व वित्तीय संस्थायें, पेन्सिल तथा अन्य मिश्रित उद्योग।

द्वितीय स्थान : आइरन व स्टील, इन्जीनियरिंग, ट्रान्सपोर्ट, प्लान्टेशन, खदान, कृषि, सूगर सेलरीड एम्पलाईज, प्रतिरक्षा तथा ग्रामीण मजदूर।

तृतीय स्थान : टेक्सटाईल, मेटल, केमिकल्स, तम्बाकू बीड़ी, मुद्रण व प्रकाशन तथा लकड़ी।

चतुर्थ स्थान : सीमेन्ट, फूड एण्ड ड्रिंक, कागज, प्लाईवुड तथा रबर उद्योग।

—सम्पादक

(शेषांश पृ० 6 का)

शिल्पियों के लाभ के लिए उत्पादन को परम्परागत प्रविधियों में युक्ति-संगत रूप से अपनाये जा सकने वाले परिवर्तन करें और ऐसा करते समय इस बात का ध्यान रखें की श्रमिकों की बेकारी न बढ़े, उपलब्ध प्रबन्धीय और प्राविधिक कौशल व्यर्थ न जाये और उत्पादन के वर्त्तमान साधनों का पूर्ण विपूँजीकरण न हो, तथा विद्युत् शक्ति की सहायता से उत्पादन की प्रक्रियाओं के विकेन्द्रीकरण पर भारी बल देते हुए, स्वदेशी प्रौद्योगिकी विकसित करें जिसमें उत्पादन का केन्द्र कारखाने के स्थान पर घर हो।

इसके अतिरिक्त, उन्हें पश्चिमी जीवन-मूल्यों का परित्याग करना होगा, और (१) वेतन-विभेदकों और स्तर-विभेदकों की एक समन्वित प्रणाली विकसित करनी होगी जिससे समानता का प्रोत्साहन के साथ तालमेल इस तथ्य को देखते हुए बिठाया जा सके कि यदि जीवन के मूल्य विशुद्धतः आर्थिक अथवा भौतिकवादी होंगे तो न्यायोचित वितरण तथा सर्वोच्च व्यक्तिगत विकास के लिए प्रोत्साहन के बीच असंगति बनी रहेगी, (१) तदनुसार ऐसा मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक वातावरण तैयार करना होगा जिसमें सामाजिक स्तर और वैयक्तिक धन के बीच का अनुपात सदैव उल्टा हो।

नव-विज्ञान आन्दोलन :

यह उत्साहवर्द्धक है कि भारत में आधुनिक विज्ञान का संस्कृति के साथ सम्बन्ध-विच्छेद करने के विदेशियों द्वारा प्रेरित प्रयत्नों का कुछ सुप्रतिष्ठित वैज्ञानिकों द्वारा विरोध किया जा रहा है। कुछ समय पूर्व परमाणु-ऊर्जा आयोग के अध्यक्ष डा० राजा रामन्ना ने इस तर्क का खोखलापन दर्शाया है कि विज्ञान और आध्यात्मिकता के संश्लेषण की बात करना केवल रूढ़िवादिता तथा पुनरूत्थानवाद मात्र है। भारतीय विचार केन्द्र द्वारा कुछ अन्य संस्थाओं के सहयोग से २४ जून, १९८३ को त्रिवेन्द्रम में आयोजित संवाद-गोष्ठी में पढ़े गये एक निबन्ध में बंगलोर के भारतीय विज्ञान संस्थान के श्री के० आई० वसु ने एक महत्वपूर्ण घोषणा की। उन्होंने अपने द्वारा आरम्भ किये गये 'स्वदेशी विज्ञान आन्दोलन' के दर्शन की व्याख्या की। उन्होंने कहा, "इस अभियान में वैज्ञानिक अनुसंधान, विकास और शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय प्राथमिकताओं के पुनर्निर्धारण की अविलम्ब आवश्यकता है। इसके लिए राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी नीति तथा राष्ट्रीय विज्ञान और प्रौद्योगिकी योजना तैयार करना आवश्यक है। ऐसी नीति और योजना का आवश्यक तत्व यह हो कि यह आत्मा और कार्यान्वियन दोनों ही दृष्टियों से पूर्णतः स्वदेशी हो। केवल ऐसे स्वदेशी विज्ञान आंदोलन से ही हमारी राष्ट्रीय आकांक्षाओं की पूर्ति हो सकती है, हमारी ग्रामीण व्यवस्था सुरक्षित रह सकती है, हमारी संस्कृति की रक्षा हो सकती है तथा संपूर्ण विश्व की सेवा हो सकती है।"

राष्ट्रीय संकल्प का अभाव :

ईश्वर की कृपा से हमें वे सारे साधन उपलब्ध हैं, जिनसे कोई देश महान बन सकता है। मानवीय भौतिक और बौद्धिक साधनों में हम किसी से पीछे नहीं हैं।

जिस वस्तु का अभाव है, वह है राष्ट्रीय संकल्प, जिससे राष्ट्रीय एकता का आविर्भाव होता है।

स्मरण रखें कि यहां क्षमता का नहीं, केवल राष्ट्रीय संकल्प और एकता का अभाव है।

नयी व्यवस्था के बारे में श्री गुरुजी के विचार :

इसी बात पर बल देते हुए श्रद्धेय गुरुजी ने कहा था, "जब एक बार एकता की जीवन-धारा हमारे राष्ट्र-पुरुष की सभी धमनियों में निर्बाध रूप से प्रवाहित होनी प्रारंभ हो जायेगी, तो हमारे राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न अंग स्वयंमेव सक्रिय होकर समन्वित रूप से समूचे राष्ट्र के कल्याण के लिए काम करने लगेंगे। इस प्रकार का जीवन्त और वर्धमान समाज अपनी अनेकानेक व्यवस्थाओं और पद्धतियों में से जो अंश उसकी प्रगति के लिए आवश्यक एवं सहायक होगा उसका संरक्षण करेगा और जिन बातों की उपयोगिता समाप्त हो गयी है उन्हें त्याग देगा तथा उनके स्थान पर नयी प्रणालियाँ विकसित

करेगा। पुरानी व्यवस्था के जाने पर आँसू बहाने की और नयी व्यवस्था के आगमन का स्वागत करने में संकोच करने की कोई आवश्यकता नहीं है। सभी जीवित एवं वृद्धिशील प्राणियों की यही प्रकृति है। जैसे एक पेड़ बढ़ता है, पके पत्ते और सूखी टहनियाँ झड़ जाती हैं तथा नये-नवल पत्तों के लिए स्थान बन जाता है। ध्यान में रखने की मुख्य बात यह है कि एकात्मता के जीवन-रस का संचार हमारे सामाजिक ढाँचे के सभी अंगों में होता रहना चाहिए। प्रत्येक व्यवस्था या पद्धति का जीवित रहना, परिवर्तित हो जाना, अथवा उसका पूर्णतः लोप हो जाना इस पर निर्भर है कि उससे उस जीवन-रस का पोषण हो रहा है अथवा नहीं। इसलिए वर्त्तमान सामाजिक संदर्भ में ऐसी सभी व्यवस्थाओं के भविष्य पर चर्चा करना व्यर्थ है। समय की सर्वोपरि माँग अन्तर्निहित एकता की भावना को पुनरूज्जीवित करना और हमारे समाज में उसके जीवन-लक्ष्य के प्रति जागरूकता पैदा करना है, शेष सभी बातें अपने आप ठीक हो जायेंगी।"

★

श्रमिकीकरण

श्रमिकाणां राष्ट्रभक्ति राष्ट्रस्योद्योगशालिता।

उद्योगे श्रम-स्वामित्वं एतत्सर्वार्थ साधनम्॥

—"शुक्रनीति"

'श्रमिकों की राष्ट्रभक्ति, राष्ट्र की उद्योगशालिता तथा उद्योगों में श्रमिकों का स्वामित्व—ये तीनों "अर्थ" सम्बन्धी सभी समस्याओं के पूर्ण समाधान करने के साधन हैं।"

अतः आवश्यक है :—

★ **श्रम का राष्ट्रीयकरण.**

★ **राष्ट्र का उद्योगीकरण.**

★ **उद्योगों का श्रमिकोकरण.**

"एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए मत देने का अधिकार जितना जरूरी है, उतना ही जरूरी है काम का अधिकार।"

—जय प्रकाश नारायण

विवाद निपटाने का माध्यम सामुहिक सौदेबाजी

श्री रामनरेश सिंह
महामंत्री, भारतीय मजदूर संघ

सामुहिक सौदेबाजी—ट्रेड यूनियन्स अधिकार का मूलाधार है। श्रमिकों को हड़ताल करने के अधिकार के बिना सामुहिक सौदेबाजी का अस्तित्व नहीं हो सकता।

सरकार और नियोजक के पास तो सभी कुछ है। कानून, वकील, दलील तथा रुपया पैसा ही नहीं, पुलिस बल भी उन्हीं के पास है। मजदूर के पास उसकी अपनी सामुहिक शक्ति है। जिसके बल पर वह नियोजक को समझौते के लिए बाध्य करता है।

कमजोर यूनियन व असंगठित कर्मचारी सामुहिक सौदेबाजी के लिए किसी भी नियोजक को बाध्य नहीं कर सकता। मुकदमा लड़कर अथवा मिन्नतें करके कभी भी कर्मचारी अपनी न्यायपूर्ण मांग हासिल नहीं कर सकता। किन्तु मजदूर सशक्त यूनियन के रूप में आबद्ध होकर अपनी ताकत के बल पर 'सामुहिक सौदेबाजी' के माध्यम से अपनी मांगों को प्राप्त कर सकता है।

समूचे संसार में ट्रेड यूनियन का प्रादुर्भाव मात्र इसी एकमेव कार्य के लिए हुआ कि मजदूर संगठित होकर अपनी न्यायपूर्ण मांगों को शांतिपूर्ण व अहिंसक मार्ग से 'सामुहिक सौदेवाजी' के अस्त्र से प्राप्त कर ले।

दुर्भाग्य है कि अपने देश की अधिकांश ट्रेड यूनियनें कमजोर रहने के कारण 'सामुहिक सौदेबाजी' के लिए असमर्थ हैं तथा वे नपुंसकों के हथियार के रूप में मुकदमे आदि का अवलम्बन लेती हैं, और वे इस प्रकार ट्रेड यूनियन के मूल कार्य से विरत होकर दायें-बायें का कार्य कर रही हैं।

सामुहिक सौदेबाजी का प्रादुर्भाव व विकास

प्रबन्धक चाहे उसका चयन या रचना कैसी भी हो, वह शक्ति का प्रतीक है। हर शक्ति को सीमित व नियंत्रित करने की आवश्यकता रहती है, अन्यथा वह स्वच्छन्द हो जाती है। यूनियनें ऐसे प्रबन्धकों की शक्ति को सीमित व नियमित करने की एक विशिष्ट प्रकार की माध्यम हैं। साथ ही ये स्थायी विरोध पक्ष भी हैं, जो कभी शासन का स्थान नहीं ले सकतीं। फिर भी अपनी उपस्थिति से तथा सीमित दायरे में ये औद्योगिक क्षेत्र में आवश्यक भूमिका निभाती हैं। अकेला व्यक्ति कोई भी हो सेवायोजक से समानता के आधार पर वार्ता व समझौता करने में असमर्थ व असफल रहता है, अतः 'सामुहिक सौदेबाजी' की प्रक्रिया का चलन प्रारम्भ हुआ जिसमें कुछ खोने व पाने का स्थान निहित है।

महात्मा गाँधी विवादों के निपटारे हेतु आपसी वार्ता में दृढ़ विश्वास रखते थे। उनका कहना था जहाँ दो पक्षों में उनके हितों में विरोध उत्पन्न हो, ऐसे विवादों को श्रमिकों व सेवायोजकों के अधिकृत प्रतिनिधियों के बीच समझौता वार्ता व आपसी बातचीत से सुलझाया जाय। उसके असफल होने पर संराधन द्वारा पश्चात् मध्यस्थ के माध्यम से हल किया जाय। इसके भी असफल होने पर पंचनिर्णय को सौंपा जाय किन्तु यदि वह भी निर्णय देने में असमर्थ रहे तो कोई भी पक्ष सीधी कार्यवाही के लिए स्वतंत्र रहेगा। अर्थात् उद्योगपति ताला-बन्दी कर सकता है और कर्मचारी हड़ताल पर जा सकते हैं।

अपने देश में स्वतंत्रता से बहुत पहले ही सामुहिक सौदेबाजी का इतिहास प्रारम्भ होता है। महात्मा जी ने १९१८ में अहमदाबाद की सूती मिल में ऐसा ही समझौता

कराया था। १६२० में टिस्को के प्रबन्धकों व मजदूरों के मध्य, १६३८ में तत्कालीन ट्रावनकोर रियासत के क्यार उद्योग में, नवम्बर १६४८ में बाटा संस्थान में, १६५१ में इण्डियन एल्यूमिनियम कम्पनी में तथा १६५६ में पुनः टिस्को में ऐसे अनेक कारखानों में समझौते हुए हैं। अर्थात् ऐसे कई समझौते आई० एल० ओ० के १६५१ के ३४ वें सत्र के सामुहिक समझौते के औपचारिक संस्तुति के वर्षों पूर्व किये गये थे।

१६६२ में इम्पलायर्स फेडरेशन ऑफ इण्डिया ने सामुहिक समझौतों पर एक अध्ययन प्रकाशित किया है जिसमें उसने उल्लेख किया है कि ४६ कम्पनियों ने १६५४ से १६६१ के बीच ११४ समझौते किये थे, जो ४॥ लाख कर्मचारियों पर लागू हुए थे।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने भी अपनी १६६६ की रिपोर्ट में कहा है कि सामुहिक सौदेबाजी की प्रणाली विवादों के निपटारे में असंतोषजनक नहीं रही है यद्यपि अधिकाधिक क्षेत्रों में इसका विस्तार अपेक्षित है।

सामुहिक सौदेबाजी में प्रगति

विवादों को अनिवार्य अभिनिर्णय (एडजुडिकेशन) के लिए न भेजने के कारण भी सामुहिक सौदेबाजी की ओर श्रमिकों का रुझान बढ़ा है।

१६७५ से १६७६ के बीच सामुहिक सौदेबाजी की संख्या ७३८ से १०१८ तक थी, इससे पता चलता है कि १६७० के दशक में सामुहिक सौदेबाजी की प्रगति हुई है।

सामुहिक सौदेबाजी दुकान, कारखाने व उद्योग स्तर पर होते रहे हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में भी भारत हैवी इलेक्ट्रिकल्स आदि संस्थानों के प्रबन्धक राष्ट्रीय स्तर पर यूनियन के प्रतिनिधियों से वार्ता करते हैं।

स्टील उद्योग के संयुक्त वेतन समझौता समिति की सफलता के पश्चात् सरकार ने ऐसी ही द्विपक्षीय समितियाँ बैंकिंग, कोल व सीमेन्ट में भी बनायी हैं।

बिजली उद्योग के लिए वेज गाइड लाइन कमेटी भी इसी उद्देश्य से बनायी गयी है।

सामुहिक सौदेबाजी की प्रगति दोनों पक्षों के स्वेच्छा से किये गये प्रयास के कारण अधिक विकसित हुई है, राज्य या कानून की सहायता से इसमें प्रगति नहीं हुई है।

सामुहिक सौदेबाजी के प्रति उदासीनता व बाधायें

विकास की योजनाओं को सरल विधि से क्रियान्वित करने की दृष्टि से राज्य ने सौदेबाजी की प्रक्रिया के प्रति उदासीनता का रूख अपनाया है तथा सामुहिक सौदेबाजी के विकास के लिए औद्योगिक सम्बन्धों में भी वांछनीय स्थान नहीं दिया है। राज्य के रूख के साथ ही श्रम व सेवायोजक पक्षों ने भी आधे मन से इसे महत्त्व दिया है।

इस प्रक्रिया की वांछनीय प्रगति न होने के कारणों में यह भी है कि नियोजकों के विभिन्न प्रकार हैं जिसमें छोटे-बड़े अनेक उद्योग हैं जो किसी भी संगठन से आबद्ध नहीं हैं।

ट्रेड यूनियन आन्दोलन भी विभिन्न श्रम संगठनों में बंटा है। इसके कारण भी उनकी शक्ति क्षीण-सी है। उनमें आपसी मतभेद व कटुता के कारण भी सामुहिक सौदेबाजी की स्थिति निर्माण होने में कठिनाई है।

विवादों में अनेक यूनियनों द्वारा संयुक्त रूप से साझीदारी करने की प्रवृत्ति से भी आपसी कटुता के कारण सामुहिक सौदेबाजी को क्षति पहुँच रही है।

औद्योगिक विवाद अधिनियम १६४७ ने सरकार को अधिकार दिया कि किसी भी विवाद में अनिवार्य रूप से हस्तक्षेप करे। इससे प्रबन्धकों व श्रमिकों की पहल करने की शक्ति ही छीन ली गयी है।

ट्रेड यूनियन एक्ट १६२६ किसी भी रजिस्टर्ड यूनियन को विवाद में हस्तक्षेप करने का अधिकार देता है। भारत के संविधान की धारा १६ जो केवल संघ या यूनियन बनाने का अधिकार देता है, किन्तु सौदेबाजी का अधिकार नहीं देता। हमारे संविधान के मौलिक अधिकार अथवा राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों में सामुसिक सौदेबाजी के अधिकार को शामिल न किया जाना तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा सामुहिक

सौदेबाजी पर पारित कन्वेंशन ९८ तथा संस्तुति ९१ का भारत सरकार द्वारा अनुसमर्थन न किया जाना आदि ऐसे उदाहरण हैं, जो प्रबन्धक व श्रमिकों के बीच सामुहिक सौदेबाजी को समुन्नत करने के सरकारी दृष्टिकोण के आद्य मन को दिग्दर्शित करते हैं।

हमारे देश में जहाँ गरीबी, बेकारी व निरक्षरता है, जहाँ २७ करोड़ श्रमिकों में मात्र ३ करोड़ संगठित हैं, जहाँ विभिन्न उद्योगों में राष्ट्रीय स्तर पर सेन्ट्रल वेज बोर्ड व एवार्डों के द्वारा वेतनमान व अन्य सुविधायें देने की व्यवस्था है, जहाँ लचर ट्रेड यूनियनें परस्पर विरोधी सिद्धान्तों के प्रभाव में कार्यरत हैं, जिसमें कामगारों की भारी संख्या अपने अधिकारों व सौदेबाजी की विधियों से अनभिज्ञ है, जहाँ अनेक सेवायोजक किसी न किसी बहाने से बातचीत का दरवाजा बन्द कर देते हैं—'सामुहिक सौदेबाजी' के लिए ये सभी बाधा के रूप में उपस्थित हैं।

सामुहिक सौदेबाजी की सफलता के उपाय—

सामुहिक सौदेबाजी स्वेच्छा से अपनायी जाने वाली विधि होने के कारण इसकी सफलता के लिए एक समुचित ढाँचा होना चाहिये जिसके अन्तर्गत दोनों पक्ष अपनी भूमिका को एक सामान्य व उचित मापदण्डों के अनुरूप निभा सकें।

सामुहिक सौदेबाजी की सीमित प्रगति से पता चलता है कि इस प्रक्रिया को अभी तक पूरी तरह विकसित नहीं किया जा सका है। इसकी सफलता के लिये दोनों पक्षों को अपने में संगठित होने तथा सौदेबाजी करने की पूरी स्वतन्त्रता होनी चाहिये।

सामुहिक सौदेबाजी एक गतिशील प्रक्रिया है तथा तेजी से बदलते सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों में इसके प्रभावी होने के लिए दोनों पक्षों को इस प्रक्रिया के प्रति जहाँ प्रतिबद्धता आवश्यक है वहीं उनके दृष्टिकोण का भी लचीला होना अनिवार्य है।

सामुहिक सौदेबाजी के लिये कुछ बातें हैं, जैसे—(१) सेवायोजकों का एक सुगठित संगठन (२) श्रमिकों का एक शक्तिशाली संगठन (३) एक ऐसा वैधानिक ढाँचा, जिसके द्वारा सामुहिक सौदेबाजी प्रभावी हो सके। इसमें सौदेबाजी करने वाले एजेन्ट के निर्धारण की भी व्यवस्था हो। (४) आपसी सौदेबाजी के सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए पक्षों द्वारा अवांछनीय तरीकों का बहिष्कार। (५) औद्योगिक प्रजातन्त्र को प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्धता के साथ इस प्रक्रिया में सहज विश्वास। (६) राज्य द्वारा रचनात्मक दृष्टिकोण ताकि दोनों पक्षों द्वारा स्वेच्छा से प्रक्रिया अपनायी जा सके और स्वेच्छा से संराधन (कैन्सीलियेशन, हस्तक्षेप व पंचनिर्णय (आरबीट्रेशन) का उसमें प्राविधान रहे। ऐसा कानून बनाया जाय, जिसमें अनिवार्य मध्यस्थता या न्यायिक निर्णय के बदले स्वेच्छा से सामुहिक सौदेबाजी की मुख्य भूमिका रहे।

माँग पत्र यथार्थ एवं व्यावहारिक हो—

सामुहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया समझौता वार्ता के प्रारम्भ से बहुत पहले मांग पत्र के निर्माण के साथ प्रारम्भ होकर, सम्पन्न समझौते की शर्तों पर कर्मचारियों की आम सभा में श्रमिक प्रतिनिधि द्वारा सहमति प्राप्त कर लेने के उपरान्त ही समाप्त समझी जा सकती है।

समझौता वार्ता हेतु मांग पत्र बनाने के साथ ही समझौता वार्ता के दौरान हुई पेचीदी कठिनाइयों से अनभिज्ञ सामान्य कर्मचारियों की सहमति प्राप्त करा लेना भी समझौते के लिये आवश्यक होता है।

मांग पत्र द्वारा ऊँची आशायें जगाना बाद में पूरी न होना इससे कर्मचारियों के मनोबल व नेतृत्व के प्रति आस्था पर बुरा प्रभाव पड़ता है, जिसका दीर्घकालीन दुष्परिणाम होता है। अत: माँग पत्र में ऐसी मांगें होनी चाहिये जिससे आम कर्मचारियों में ऐसी चेतना का संचार हो ताकि वे आवश्यकता पड़ने पर लम्बे अर्से तक संघर्ष कर सकें तथा समझौता वार्ता को बल देने के लिये पर्याप्त दबाव भी डाल सकें। इसके साथ ही उसमें पर्याप्त लेन-देन की भी गुन्जाइश होनी चाहिये। कुल मिलाकर इसके लिये ऊँचे दर्जे का कुशल नेतृत्व चाहिये जो कर्मचारियों के विभिन्न मतों और विचारों का

मन्थन करके एक यथार्थ एवं व्यावहारिक मांगपत्र की रचना कर सके और जो न्यायिक आधार पर भी निर्भर करता हो।

उद्योग के विषय में सम्पूर्ण जानकारी तथा आंकड़ों का सम्यक संग्रह भी एक पहलू है जो मांग पत्र की रचना तथा समझौते की शर्तों के निर्धारण पर दीर्घकालीन प्रभाव डालता है।

वार्ता मंच पर—

समझौता वार्ता की मेज पर श्रमिक नेता को एक बार पुन: धैर्यपूर्ण लम्बी वार्ता के लिये तैयार रहना चाहिए। उत्तेजित होने अथवा भावावेश में आने के बजाय उसे अपना मस्तिष्क ठण्ढा रखना चाहिये। उसे अपने साथियों से सलाह मशविरा करके पहले ही यह निश्चित कर लेना चाहिये कि किन मांगों पर उसे दृढ़ रुख अपनाना है और किन पर किस स्तर तक समझौता किया जा सकता है। इन बातों पर मद्दे नजर रखते हुए तथा परिस्थिति की मांग के अनुसार अपना खेल खेलना चाहिए। सामान्यतया अपने पत्ते को बन्द रखकर पहले दूसरे के प्रस्तावों को प्रकाश में लाने का प्रयास करना चाहिए।

बहुत से अवसरों पर समझौता वार्ता भंग हो सकती है अथवा उसमें अवरोध आ सकता है। फिर भी नेता को अपना साहस तथा धैर्य नहीं खोना चाहिये। यही बुद्धि एवं कुशलता के परीक्षा की घड़ी होती है। वार्तालाप को पुन: बढ़ाने हेतु उसे परिस्थिति के पुन: निर्माण की स्थिति बनानी चाहिये।

वार्ता के मध्य नेता को वातावरण विषाक्त होने से बचाना चाहिए। न तो उसे कटु बचन बोलने चाहिये और न ही गरम होना चाहिये। परन्तु इसका यह कतई अर्थ नहीं है कि उसे अपनी बात पर दृढ़ नहीं रहना है।

दूसरी ओर से जब भी कोई पेशकश की जाय तो न तो उसे तुरन्त अस्वीकार करना चाहिए और न ही उस पर जल्दी में अपनी सहमति ही देनी चाहिए। सामान्यतया प्रारम्भिक प्रस्तावों में बुद्धि कौशल एवं बातचीत के द्वारा सुधार करने की चेष्टा करनी चाहिए।

ईमानदारीपूर्वक समझौता करने के उद्देश्य से ही समझौता वार्ता करनी चाहिये। अत्यधिक जल्दबाजी एवं अनावश्यक रूप से देर तक वार्ता को खींचने—दोनों से ही बचना चाहिए।

समझौता वार्ता के समय भी हमें अपनी संघर्ष शक्ति को सचेत रखना चाहिए। यदि दूसरे पक्ष को इस बात का आभास रहेगा कि वार्ता भंग होने पर उसे आन्दोलन का सामना करना होगा तो वार्ता कुछ लाभप्रद हो सकती है।

सामुहिक सौदेबाजी किसे कहते हैं—

किसी भी उद्योग एवं संस्थान की संचालन प्रक्रिया में दो पक्ष होते हैं—(१) श्रमिक एवं (२) प्रबन्धक। ये दोनों ही सामुहिक कार्यों के माध्यम से अपने पक्षीय हितों की सुरक्षा एवं अभिवृद्धि हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। दोनों के हितों की टकराहट की स्थिति में दोनों ही पक्ष परस्पर लेन-देन (गिव एण्ड टेक) की प्रवृत्ति के आधार पर सौदेबाजी करते हैं, जिसे 'सामुहिक सौदेबाजी' के नाम से जाना जाता है।

सामुहिक सौदेबाजी की सफल परिणति दोनों पक्षों के मध्य परस्पर सहमति में होती है, जिसे दोनों पक्षों के प्रतिनिधि आमने-सामने बैठकर बातचीत के द्वारा स्वीकार करते हैं—यह सामुहिक समझौता कहलाता है।

सामुहिक सौदेबाजी के लिए आवश्यक बातें—

सामुहिक समझौता लिखित में होता है तथा इस पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के दिनांक सहित हस्ताक्षर होते हैं।

उसमें,

विवाद विषय,
क्या समझौता हुआ?
कब से लागू होगा?
कब तक लागू रहेगा?
किन-किन पर लागू होगा?
कैसे लागू होगा? एवं

(शेष पृ० 38 पर)

बीड़ी मजदूर—गुलामी के शिकार

कनक प्रकाश

मंत्री, अखिल भारतीय बीड़ी मजदूर महासंघ

प्रस्तुत लेख में लेखक ने बीड़ी उद्योग और उसके मजदूरों की सही स्थिति दर्शायी है। प्रश्न है—ये मजदूर वास्तव में कबतक गुलाम रहेंगे।—सम्पादक

भारत के प्रत्येक बड़े-छोटे शहरों में, रेलवे स्टेशनों बंदरगाहों, खानों, सिनेमा प्रतिष्ठानों में पान-सिगरेट-तम्बाकू वाली दूकानों से आसानी से रंग-बिरंगे लेबुल में आप बीड़ी प्राप्त कर सकते हैं।

यह गरीब मजदूर वर्ग का सस्ता धूम्रपान हल्के नशा के लिए है। इसकी ज्यादा खपत खान, चाय बागान के मजदूरों, रिक्सा-ठेला चालक, खेतिहर मजदूरों एवं साधारण किसानों में है। अब शौक के रूप में कालेज-विद्यार्थी सेवन करने लगे हैं। इस प्रकार देश की बड़ी आबादी बीड़ी पीने की आदी है।

बीड़ी निर्माण में लगे कच्चे माल केन्दुपत्ता एवं तम्बाकू की प्रचुरता इस देश में है। केंदुपत्ता उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश, बिहार आदि राज्यों के वनों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। विशेष रूप में गुजरात, महाराष्ट्र आदि अनेक राज्यों में इसकी खेती होती है। बीड़ी निर्माण मुख्य रूप से, बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, राजस्थान, महाराष्ट्र, केरल, कर्नाटक राज्य में होता है। भारत सरकार के सर्वेक्षण के अनुसार पूरे देश में ५० लाख बीड़ी मजदूर बीड़ी निर्माण में लगे हैं। इनकी संख्या बिहार प्रदेश में साढ़े तीन लाख है।

इधर पाँच वर्षों में, बीड़ी बनाने में एम० ए०, बी० ए०, मैट्रिक के छात्र भी शामिल हो गये हैं। इसका मूल कारण बेरोजगारी है। न्यूनतम पंद्रह दिन से दो माह में बीड़ी बनाने की कला सीख ली जाती है तथा इसमें कोई विशेष उपकरण या धनकी आवश्यकता नहीं पड़ती। अभी २५ प्रतिशत बच्चे, ५ प्रतिशत शिक्षित एवं बड़े पैमाने पर पिछड़ी एवं हरिजन वन-वासी जाति की बहुलता है तथा कौम आधार पर मुसलमानों की तायदाद अच्छी है।

बीड़ी बनाने का कार्य देश भर में तीन तरह से किया जा रहा है। बीड़ी कम्पनी मजदूरों को सीधे कच्चा-माल देकर बीड़ी दो प्रकार से बनवाती है। (ए) घर खाता में (बी) कारखाना में। दूसरा बीड़ी कम्पनी, ठीकेदार या सहेदार या कमीशन एजेंट की बहाली कर इन्हीं लोगों को कच्चा माल देकर कम्पनी की देख-रेख में (ए) घर खाता और (बी) कारखाना में बीड़ी बनवाते हैं तथा मजदूरों को मजदूरी सहेदार या ठेकेदारों के मार्फत देती है। तीसरा मजदूरों की कानूनी सुविधाओं की जवाबदेही कम्पनी स्वतंत्र रूप से अपने ऊपर नहीं लेती। बीड़ी कम्पनी, ठीकेदारों और साहेदारों से किसी भी प्रकार से बनी हुई बीड़ी खरीदती है। इसमें बीड़ी मजदूरों की मजदूरी का भुगतान की सारी जिम्मेवारी ठीकेदारों या सहेदारों की होती है। कच्चा माल ठीकेदार को स्वयं मजदूरों को देना होता है। पूरे देश में क्रम एक में मात्र ५ प्रतिशत मजदूर कार्यरत है। शेष क्रम २ और ३ से बनने वाली बीड़ी में मजदूरों का अत्यधिक शोषण तो होता ही है साथ ही साथ करोड़ों रुपये का सरकार का वेलफेयर सेस एवं उत्पादन कर भी मारा जाता है।

बीड़ी कम्पनी के प्रबंधक या ठीकेदारों, सहेदारों से कच्चा माल प्राप्त कर मजदूर अपने घर में बीड़ी बनाकर

निर्माता को देते हैं। प्रबंधक या कमीशन एजेंट, ठीकेदार या सहेदारों के द्वारा शेंडों या उनके द्वारा निर्धारित स्थान पर कच्चे माल दिये जाते है तथा उसके स्थान पर उनकी देख रेख में कारखाने में हीं बीड़ी बनती है। भारत सरकार इन विचौलियों के शोषण से मुक्ति के लिए को-आपरेटीव वेसीस से बीड़ी बनाने का प्रयोग कर रही है, जिसमें मजदूर स्वयं मालिक रहेगा। इसमें कम से कम १०० मजदूर सदस्य होंगे। शेड एवं कच्चा माल आदि के लिए सरकार ऋण की व्यवस्था करावेगी। इस में केरल प्रदेश अभी सफलता की ओर है।

ये मजदूर असंगठित हैं। घर खाता के मजदूरों को एकीकरण या जागृत करना बहुत कठिन है। अर्थाभाव कारण शरीर जर्जर रहता है। जिस प्रकार भारत के किसान वर्षा पर आश्रित रहता हैं। उसी प्रकार बीड़ी मजदूर बीड़ी निर्माताओं पर आश्रित रहता है। इच्छानुसार काम नहीं मिलता। वक्त पर मजदूरों की मजदूरी नहीं मिलती। मजदूरी के स्थान पर ठीकेदार, सहेदार मनमाने दाम पर कपड़े एवं अन्न की व्यस्था अपने मनचाहे दुकानों से करवाते हैं। मजदूरी की बढ़ोतरी भी मालिक प्रबंधक, ठेकेदारों की इच्छा पर निर्भर करती है।

ट्रेड युनियनों की जागृति के आधार पर इनकी समस्याओं का निदान हो रहा है।

भारत सरकार का बीड़ी श्रमिक कल्याण संगठन १९७४ से कार्यरत है। इसमें मेडिकल सुविधाएँ सेस से प्राप्त करानी हैं। लेकिन कौन बीड़ी मजदूर है, किस कम्पनी का है, किस ठेकेदार या सहेदार का है—यह प्रमाणित करने में अभी तक सरकार सफलता प्राप्त नहीं कर सकी। देश में कितनी बीड़ी कम्पनियाँ है। कितने ठेकेदार या सहेदार हैं। किसमें कितने बीड़ी मजदूर कार्यरत है किसमें कितने बच्चे, कितनी महिलाएँ है। कौन कम्पनी कितनी मजदूरी दे रहीं है। न्यूनतम मजदूरी दे रही है या नहीं! नहीं दे रही है तो दिलायी जाय। ये सारे सवाल मौजूद है। सबसे गम्भीर बात तो यह है कि बीड़ी मालिक प्रबंधक, ठेकेदार या सहेदार, कमीशनदार तक बीड़ी श्रमिक कल्याण संगठन का मेडिकल कार्ड तक देने में आना-कानी कर रहें है। न देने वाले के लिए सरकार के कानून में दण्ड तक की व्यवस्था नहीं है। निर्धारित न्यूनतम मजदूरी भुगतान नहीं करने पर दण्ड की व्यवस्था तो है। लेकिन न्यायालय को निर्णय देने की अवधि निश्चित नहीं हैं। वर्षों तक न्यायालय में मुकदमें लंबित पड़े रहने से मजदूरों को राहत नहीं मिल पाती।

घर खाता में कार्यरत अधिकांशतः महिलाएँ जो पर्दे में रहती है। यक्षमा रोग से पीड़ित पायी गयी हैं। बच्चे असमय जवानी के पहले बुढ़ापा के शिकार हो जाते हैं। प्रायः ४० वर्षों में ही कार्य क्षमता समाप्त हो जाती है। तम्बाकू एवं केन्दु के पत्ते के जहर से उँगलियों के माध्यम पूरा शरीर जहरीला हो जाता है और तम्बाकू के सुखे महीन-कण श्वास के जरिये फेफड़ों में जमा होते रहते है जो टी० वी० रोग के शिकार बनते हैं। स्वयं राज्य मंत्री, स्वास्थ्य ने स्वीकार किया है कि बिहार शरीफ और झाझा के अनेक मजदूर जो बीड़ी बनाते हैं, यक्षमा रोग के शिकार हो गये हैं।

बीड़ी कार्य पीस रेट में होने के कारण, उम्र ढलने पर बीड़ी बनाने की क्षमता घटती जाती है जिससे मजदूरों की आय बहुत कम हो जाती है। फलतः परिवार का भरण पोषण नही किया जा सकता। इसके कारण पुनः उनके बेटे-बेटियाँ, बीड़ी बनाने के काम में कम ही उम्र में करने को मजबूर हो जाती हैं। यह सिलसिला लगभग ४० वर्षों से चलता आ रहा है।

सरकार की दूरदर्शिता से सहकारिता योजना चलाना अच्छा है। परन्तु बड़े-बड़े पूंजीपतियों की प्रतिस्पर्धा में इस योजना के होने का आसार नजर नहीं आता। सरकार को कोपरेटीव चलाने वालों के लिये अन्त में बाजार की व्यवस्था करनी होगी या अन्य उत्पादक, सेस में छूट देनी पड़ेगी। केन्दु पत्ता एवं तम्बाकू को न्यूनतम मूल्य पर मुहैया करवाना पड़ सकता है।

बड़ी-बड़ी कम्पनियों पर अंकुश रखने हेतु कानून में संशोधन की आवश्यकता है। ठेकेदारी या सहेदारी प्रथा

समाप्त करनी होगी या उन लोगों को भी सारी सुविधाएं मजदूरों को देने के लिए विवश करनी होगी। चिकित्सा की भरपूर व्यवस्था, कुशल चिकित्सक एवं आवश्यकता-नुसार दवा की व्यवस्था करनी होगी। बेघर बीड़ी मजदूरों को कॉलोनी के रूप में सरकार को स्वयं मकान बनाकर आवासीय सुविधाएं मुहैया करवानी पड़ेगी। मजदूरों को ट्रेड यूनियनों के द्वारा साक्षर करने एवं उनके बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए छात्र-वृत्ति मिलनी चाहिए। परिवार कल्याण योजना को शख्ती से लागू करवाना होगा। बीड़ी प्रबंधकों में मजदूरों की साझेदारी देनी होगी।

रात-दिन काम करने के बावजूद वास्तविक मजदूरी तथा सरकारी सुविधाएं हासिल नहीं कर सकते [illegible]। क्या सरकार के पास समाधान करने की क्षमता नहीं [illegible] रूप से है। पर इसके लिए कठोर कदम उठाना हो[illegible]।

बीड़ी बहुल क्षेत्रों में प्रखण्ड स्तर तक कार्यान्वयन समितियों का निर्माण करवाना होगा। प्रति दो वर्ष पर बीड़ी उद्योग में मान्यता हेतु कठोरता से चुनाव करवाना जिसमें ५१ प्रतिशत मजदूरों के समर्थन हो उस यूनियन को मान्यता देनी होगी। प्रति माह की गई कारवाई को जिला स्तर पर निर्मित सलाहकार परिषद में समीक्षा हेतु लाना होगा। सुविधाओं को न देने वाले नियोजकों को बीड़ी निर्माण करने का लाईसेंस रद्द करने, उचित दण्ड की व्यवस्था करनी होगी।

●

SHARP THRUST TO POWER DEVELOPMENT IN BIHAR

In consonance with the 20-point Programme of the Prime Minister, the Bihar State Electricity Board has given a sharp thrust to power development in the State. The salient features of the achievements in the power sector are given below :

Item	Achievement during 1980-81	Achievement during 1983-84
Power generation (in million units)	2281	2458
Electrification of villages	2069	3607
Electrification of Harijan basties	30	3706
Revenue Collection (in crores of rupees)	108.54	186.56

THIS IS HOW POWER IS BEING
USED FOR PROSPERITY IN BIHAR

—Bihar State Electricity Board

THE B. M. S. SYMBOL

AN OPPOSABLE HUMAN THUMB

......**WHY ?**

BECAUSE.........

The Human Thumb is the perceptible physical base of all material progress.

Man can hold all the instruments, the hammer, the sickle, the wheel, the plough—the gun or the pen because of this thumb. (The wheel of industry at the back and farm produce at the front illustrate this central position of symbol.)

This had made the Man—a worker, an artist, a writer, a creator of things.

It stands to promise that :

MAN CAN TRANSCEND THE NATURE

and

FULFIL THE AIM OF UNIVERSAL LABOUR

BMS

DISTINCT CHARACTERISTICS

- Total rejection of class conflict theory.
- Determination to steer clear of both, capitalism as well as communism.
- Perfectly non-political character.
- Motto : Industrialise the Nation, Nationalise the Labour and Labourise the Industry.
- Advocacy of maximum production with equitable distribution.
- Aspiration to reorganise the society on the scientific basis of the integration of classes and autonomous industrial communities on the Bharatiya pattern.
- Freedom from intellectual slavery of western concepts, terminologies, and ideologies.
- Acceptance of "Bhagwa" flag which represents the best and noblest in the Bharatiya values of life and traditional symbol of universal love renunciation and sacrifice.
- Equal stress on "Rights" and "Duties"
- Our National Labour Day ; Vishwakarma Jayanti.
- Recognition of the "Right to work", as a Fundamental Right.
- Nationalistic outlook.
- Constructive approach.
- Idealism, not expediency.

१८ अप्रिल १९८४ संसद के समक्ष विराट मजदूर प्रदर्शन

राष्ट्रीय अभियान समिति द्वारा 18 अप्रील, 84 को संसद के समक्ष (नयी दिल्ली) विराट प्रदर्शन को संबोधित करते हुये भा० म० सं० के संस्थापक श्री दत्तोपंत ठेंगडी।

राष्ट्रीय अभियान समिति द्वारा 18 अप्रील, 84 को संसद के समक्ष विराट् ऐतिहासिक प्रदर्शन। बिहार भा० म० संघ के प्रदर्शनकारियों का नेतृत्व करते हुए महासचिव श्री रामदेव प्रसाद एवं संगठन मंत्री श्री सुरेश प्रसाद सिन्हा।

एच० ई० सी० राँची अभूतपूर्व मजदूर आन्दोलन

चित्र में आंदोलन के प्रणेता एवं जुझारू मजदूर नेता श्री समरेश सिंह, को अन्य मजदूर नेताओं के साथ हथकड़ी पहनाकर पुलीस द्वारा जेल ले जाते हुये।

प्रदेश महामंत्री श्री रामदेव प्रसाद
समझौता-वार्ता के कुशल नायक

प्रदेश उपाध्यक्ष श्री समरेश सिंह
संग्राम का शंखनाद करते हुए

एच० ई० सी० मजदूरों की जीत :

भारतीय मजदूर संघ की देन

प्रस्तुतकर्त्ता—श्री सुरेश प्रसाद सिन्हा
प्रदेश संगठन मंत्री

भारत सरकार के सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में प्रमुखतम प्रतिष्ठान एच० ई० सी० रांची में पिछले अगस्त माह में वर्षों से पीड़ित, शोषित मजदूरों के आन्दोलन को भारतीय मजदूर संघ के जुझारु एवं कुशल नेतृत्व के फलस्वरूप मजदूरों ने केवल अपनी मांगे ही नहीं प्राप्त की, अपितु एक सम्मानपूर्ण नयी जिन्दगी पाने में सफलता पायी।

भारी अभियन्त्रण निगम—इसकी स्थापना ३१ दिसम्बर, १९५८ में बिहार के प्रमुख औद्योगिक नगर रांची से १० कि०मी० दूर धुर्वा नामक स्थान पर हुई थी। यह रूस एवं चेकोस्लाविकिया के सहयोग से बना प्रतिष्ठान है। इसके उद्घाटन के समय स्व० पंडित जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—"देश का यह महान सार्वजनिक प्रतिष्ठान एक पवित्र मन्दिर है।" परन्तु दुर्भाग्यवश सरकार की गलत नीति, प्रबन्धक के भ्रष्ट आचरण, मजदूर विरोधी व्यवहार तथा मान्यता प्राप्त इन्टक युनियन की जातीयता के दलदल में फँसकर आपसी कलह एवं गुंडेगर्दी के द्वारा मजदूर विरोधी समझौते कर थैली भरने के कारण मन्दिर की पवित्रता खत्म हो गई। संस्थान में राजनैतिक नेता सहित १६ वर्षों में १३ चेयरमैन हो चुके हैं।

निगम के प्रमुख तीन ईकाई हैं—

एच० एम० बी० पी० (हेवी मशीन एण्ड बिल्डींग प्लांट), एफ० एफ० पी० (फाउन्ड्री फोर्ज प्लांट), एच० एम० टी० पी० (हेवी मशीन टूल्स प्लांट) हैं। तीनों प्लांटों प्रशासकीय कार्यालय, परिवहन, अस्पताल आदि विभागों को मिलाकर लगभग १७ हजार मजदूर एवं ५ हजार पदाधिकारी कार्यरत कुल २२ हजार की मानव शक्ति है।

सुरेश प्रसाद सिन्हा

प्रबन्धन की गलत नीतियों का शिकार निगम एवं मजदूर—

प्रारम्भ से ही सरकार की गलत नीतियों के कारण यह एक व्यापारिक संस्थान की जगह पर राजनैतिक चारागाह बन गया है। जिसके कारण निगम को अपेक्षाकृत लाभ के बदले करोड़ों का घाटा हो रहा है। इसके लिए मजदूर कतई दोषी नहीं क्योंकि स्थापना के पश्चात २३

जुलाई '८४ के पूर्व पूरे निगम में कभी सम्पूर्ण हड़ताल नहीं हुई थी। असंतोष रहने के बावजूद इंटक की गुण्डागर्दी के कारण विरोधी संगठनों के कोई बड़ा आन्दोलन नहीं हो पाया। विदित हो कि केन्द्रीय श्रम संगठनों के युनियनों के सहित निगम में २७ निबन्धित युनियन हैं। इसमें से तीन-चार युनियन को छोड़कर शेष निष्क्रिय एवं जातीय युनियनें हैं।

आन्दोलन के पूर्व भारतीय मजदूर संघ की भूमिका—भारतीय मजदूर संघ से सम्बद्ध हटिया श्रमिक संघ की स्थापना १९६६ में हुई। अपने प्रारम्भ काल से ही एक संघर्षशील युनियन के रूप में कार्यरत रहा। समय-समय पर मजदूरों की मांगों के लिए आन्दोलन करते रहा। अपने सिद्धान्त के अनुसार राष्ट्रहित, उद्योगहित, मजदूर-हित के अनुसार राष्ट्रीय दृष्टिकोण को अपना कर जहां मजदूरों की मांगों के लिए संघर्ष किया, वहीं निगम के हित में भ्रष्ट पदाधिकारियों के घोटाला के खिलाफ संघर्ष करते आ रहा है। समय-समय पर लोकसभा एवं राज्य सभा में भ्रष्टाचार के बारे में प्रश्न किये गये। जिस पर सी० बी० आई० ने जांच कर ऐसे अधिकारियों पर केस भी किया। परन्तु अध्यक्ष ने ऐसे भ्रष्ट पदाधिकारी पर कोई कार्रवाई न की।

दिनांक २७ फरवरी, '८४ को श्री बी० पाण्डेय तत्कालीन अध्यक्ष हटिया श्रमिक संघ ने केन्द्रीय उद्योग मंत्री को एक स्मार-पत्र दिया जिसकी प्रतिलिपि प्रधानमंत्री तथा सभी सम्बन्धित अधिकारियों को दिया गया। स्मार-पत्र में निगम के मुख्य घोटाला एफ० एफ० पी० में करोड़ों रुपये के रूवल कोल तथा स्लेग कोल के विक्री कांड जिसके लिए मजदूरों ने धरना प्रदर्शन कर रंगे हाथ ट्रकों को पकड़ा था। इसके अतिरिक्त सेक्टर-२ के पानी टंकी में ठेकदारों को १४ लाख रुपया गलत भुगतान, एच० एम० टी० पी० में नये टुल्स को स्क्रैप के नाम पर बेचना तथा बाहर से सामानों की खरीद में करोड़ों का घोटाला आदि था।

भ्रष्टाचार के खिलाफ श्रमिक संघ के आन्दोलन एवं संघर्ष करने के कारण भ्रष्ट पदाधिकारियों का गुट संघ के नेताओं से बदला लेने की ताक में था।

अभियान समिति का प्रादुर्भाव—एच० ई० सी० निगम में विभिन्न खेमों में बंटे मजदूरों को संगठित करने के लिए हटिया श्रमिक संघ के भूतपूर्व मंत्री श्री बी० पी० तांती के संयोजकत्व में राष्ट्रीय अभियान समिति के घटकों ने स्थानीय स्तर पर अभियान समिति बनायी जिसमें कुछ स्थानीय स्वतंत्र युनियनें भी सम्मिलित की गई। समिति ने मार्च में १२ सूत्री मांग-पत्र प्रबन्धक के समक्ष पेश किया। समय-समय पर आन्दोलनात्मक कार्यक्रम होते रहा। परन्तु अभियान समिति बड़ा आन्दोलन करने में सक्षम नहीं था।

शिवराज जैन की मजदूर विरोधी रवैया—

निगम के अध्यक्ष श्री शिवराज जैन निगम में भ्रष्ट पदाधिकारियों द्वार किये गये घोटाला रोकने तथा ऐसे पदाधिकारियों पर अनुशासनात्मक कार्रवाई करने में अक्षम थे। उल्टे वित्तीय अनुशासन के नाम पर मजदूरों की न्यायोचित मांगों को देने की बात तो अलग रही, अपनी तानाशाही रवैया के कारण दी गई सुविधाओं को भी समाप्त कर दिया। शंकरन कमिटी द्वारा निर्धारित डेट लाइन प्रमोशन पालीसी, मृतक एवं सेवा निवृत कर्मचारियों के आश्रितों को नौकरी देना बंद कर दिया। साथ ही अभियान समिति के प्रमुख घटकों को ट्रेड युनियन की प्राप्त सुविधाओं को वापस ले लिया।

इसके अतिरिक्त इन्टक युनियनों से नगर भत्ता एवं मकान किराया भत्ता पर १९ माह के बकाया निगल कर गलत समझौता कर लिया। प्रबन्धक एवं इन्टक युनियन के मजदूर विरोधी समझौते एवं उपर्युक्त कारणों से मजदूरों में असन्तोष की चिनगारी सुलग रही थी।

श्री बी० पाण्डेय एवं श्री महेश राम आन्दोलन के मशाल को सुलगाया—१४ जुलाई को श्रमिक संघ के कार्यकारी अध्यक्ष श्री बी० पाण्डेय एवं प्रमुख कार्यकर्त्ता श्री महेश राम के नेतृत्व में निगम के अध्यक्ष जब एच० एम० टी० पी० का निरीक्षण कर रहे थे उसी समय एक शिष्टमंडल मिलकर मजदूरों की समस्या को रखना चाह रहा था। अध्यक्ष एस० आर० जैन ने अपनी

अफसरशाही का रोब जमाते हुए कहा कि अगर तुम लोग इस प्रकार का रवैया अपनाओगे तो मैं कारखाना लाक-आउट कर दूंगा। अध्यक्ष के इस तानाशाही कड़क का पूरे उत्तेजित मजदूरों ने नारों से विरोध किया। प्लांट में भगदड़ मच गई। प्रबन्धक के भ्रष्ट पदाधिकारी हटिया श्रमिक संघ से बदला लेने की ताक में था ही। १६ जुलाई को उक्त दोनों श्रमिक नेताओं को बिना किसी कारण बताओ नोटिस को तीन माह का वेतन देकर सेवा समाप्त कर दिया। फिर क्या था यह खबर जंगल में आग की तरह फैल गई। मजदूरों में असन्तोष की सुलग रही चिनगारी आक्रोश के शोला में बदल गई। इसी परिस्थिति में भारतीय मजदूर संघ के क्रांतिकारी नेता श्री समरेश सिंह ने १७ जुलाई को एच० ई० सी० के मजदूरों में क्रांति का शख फूंक कर आन्दोलन का नेतृत्व किया। उन्होंने घोषणा की कि अगर २२ जुलाई तक श्री बी० पाण्डेय और श्री महेश राम को नौकरी पर वापस नहीं लिया गया तो २३ जुलाई को एक दिन का सांकेतिक हड़ताल होगी।

प्रबन्धक ने इस घोषणा को मखौल समझा और इन्टक युनियन ने प्रबन्ध को आश्वास्त किया कि इन्टक के गुंडेगर्दी के सामने कोई भी ताकत हड़ताल नहीं करा सकता। एच० ई० सी० ट्रेड युनियन अभियान समिति सक्रिय हो गया और सारा मजदूर आंदोलित हो गया। २२ जुलाई को विशाल जुलूस का नेतृत्व श्रीसुरेश प्रसाद सिन्हा ने की। फिर भारतीय मजदूर संघ के स्थापना दिवस पर एवं लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के जन्म तिथि पर एच० ई० सी० में प्रथम बार २२ हजार मजदूर एकजुट होकर २३ जुलाई को एक दिन का सांकेतिक हड़ताल किया। हड़ताल के पूर्व रात्रि के १ बजे क्रांतिकारी नेता श्री समरेश सिंह को श्रमिक संघ कार्यालय से गिरफ्तार कर लिया गया। हड़ताल के दिन श्री सिंह के साथ श्रमिक संघ के प्रमुख कार्यकर्त्ता मोहन लाल केशरी एवं अभियान समिति के तीन अन्य गिरफ्तार लोगों को थाना से कोर्ट तक हथकड़ी लगाकर ले जाया गया। सरकार की इस रवैया से रांची का पूरा जनमानस उत्तेजित हो गया।

२४ जुलाई को मजदूरों की विशाल सभा अभियान समिति के तत्वावधान में हुई जिसे सर्वश्री समरेश सिंह, प्रदेश महामंत्री श्री रामदेव प्रसाद श्रमिक संघ के महामंत्री श्री निर्मल कुमार के अतिरिक्त अभियान समिति के घटक नेताओं ने संबोधित किया। अभियान समिति ने १६ सूत्री मांगों की घोषणा की, जिसमें प्रमुख मांगे थीं—दो श्रमिक नेता सर्वश्री बी० पाण्डेय और महेश राम के सेवामुक्ति आदेश को बिना शर्त वापस लेना, शकरन कमिटी के अनुसार डेट-लाइन प्रोन्नति नीति के आधार पर १६८१ तक कर्मचारियों को प्रोन्नति देना, नगर भत्ता तथा मकान भत्ता का १६ माह का बकाया राशि आदि। ३० जुलाई को अ० भा० महामंत्री मा० रामनरेश सिंह, प्रदेश उपाध्यक्ष समरेश सिंह, रीतलाल प्रसाद वर्मा, सांसद एवं प्रदेश मंत्री रामदेव प्रसाद के साथ उद्योग सचिव से मिल कर प्रस्तावित हड़ताल को टालने का प्रयास किया गया। लोकसभा में श्री रीतलाल प्र० वर्मा, सांसद तथा राज्य सभा में श्री अश्विनी कुमार एवं श्री कैलासपति मिश्र ने आवाज उठायी।

एच० ई० सी० मजदूरों का आत्मविश्वास जाग उठा था और मजदूरों के आक्रोश को देखते हुए ९ अगस्त से अनिश्चितकालीन हड़ता की घोषणा की गई।

अभियान समिति के घटकों ने अनिश्चित कालीन हड़ताल के लिए जीतोड़ परिश्रम करना प्रारम्भ कर दिया। उधर प्रबन्धक एवं इन्टक युनियन ने इसे असफल करने के लिए पैसे एवं गुन्डेगर्दी का सहारा लिया। श्रम विभाग जब प्रबन्धक के अड़ियल रूख से परेशान हो गया तो उल्टे हड़ताल को अवैध घोषित कर दिया। समय-समय पर श्री समरेश सिंह प्रदेश महामंत्री रामदेव प्रसाद एवं अभियान समिति के घटक नेताओं ने कर्मचारियों के मनोबल को बढ़ाया ही नहीं अपितु मजदूर आन्दोलन को जनआंदोलन में परिणत कर दिया जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण ८ अगस्त को मुख्य द्वार पर महिलाओं, छात्रों

एवं स्कूली बच्चों का अभूतपूर्व विशाल प्रदर्शन है। उसी दिन इन्टक के एक गुट ने हड़ताल के पक्षधर कर्मचारी श्री अवध किशोर प्र० सिंह की हत्या कर दी।

आखिर शहीद दिवस ६ अगस्त के अवसर पर ऐतिहासिक अनिश्चितकालीन शतप्रतिशत हड़ताल प्रारंभ हो गई। प्रबन्धक की सारी ताकत, प्रलोभन तथा इन्टक युनियन के आतंक के बावजूद हड़ताल शान्तिपूर्ण एवं मुक्कमिल चलती रही तभी श्रम विभाग ने २२ अगस्त से समझौता वार्ता पटना में निर्धारित किया।

प्रारम्भ के दो तीन दिनों तक निगम के अध्यक्ष, अभियान समिति एवं मान्यता प्राप्त इन्टक की युनियनों की अलग-अलग बैठक श्रमायुक्त के समक्ष होती रही। अन्ततोगत्वा निगम अध्यक्ष श्री जैन को अभियान समिति के आमने-सामने बैठने के लिए बाध्य होना पड़ा।

२६ अगस्त को प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी टाटानगर के टेलीविजन उद्घाटन हेतु रास्ते में रांची हवाई अड्डे पर कुछ देरी के लिए उतरी तो एक विशाल प्रदर्शन हवाई अड्डे के बाहर किया गया। स्वयं प्रधान मन्त्री ने हड़ताली मजदूरों की चट्टानी एकता से अवगत हुई। २२ अगस्त से २९ अगस्त तक हड़ताल के दौरान लगातार श्रमायुक्त एवं श्रमसचिव के समक्ष रात्रि के २ बजे तक वार्ता चलती रही। वार्ता की विशेषता थी कि प्रबन्धक के आपसी झगड़े के कारण निगम अध्यक्ष श्री शिवराज जैन ने कार्मिक निदेशक श्री हसन सहित पूरे विभाग को वार्ता से अलग रखा। जिससे समझौता में सुविधा हुई। समझौता-वार्ता का नेतृत्व श्री रामदेव प्रसाद कर रहे थे।

बीच-बीच में इन्टक के अ०भा० अध्यक्ष श्री बिन्देश्वरी दूबे द्वारा वार्ता में बाधा पहुंचायी गई, परन्तु उन्हें मुंह की खानी पड़ी।

समझौता-वार्ता में श्री बी० पाण्डेय एवं श्री महेश राम के सेवामुक्ति आदेश वापस करने के लिए अड़ना पड़ा। एक ओर सत्रह हजार मजदूरों की मांग और दूसरी ओर भारतीय मजदूर संघ के दो नेता तथा आन्दोलन के अग्रणी की नौकरी का सवाल था। अन्त में "बी० एम० एस० की क्या पहचान ! त्याग तपस्या और बलिदान" के नारे को सार्थक करते हुए दो नेताओं के बलिदान देकर पूरे एस० ई० सी० के मजदूरों की मांगों की पूर्ति तथा सम्मानजनक जीवनयापन के लिए भारतीय मजदूर संघ ने मजदूर जगत में मजदूरों के लिए एक अनोखा बलिदान का उदाहरण प्रस्तुत किया। उन दोनों की नौकरी मजदूरों की नैतिकता पर छोड़ दी गई।

आन्दोलन के पश्चात् भा० म० सं० की भूमिका :

३० अगस्त को मजदूरों की विशाल सभा को रांची के जन नेता समरेश सिंह, प्रदेश महामंत्री श्री रामदेव प्रसाद ने मजदूरों की शानदार एकता के लिए बधाई दी। श्री रामदेव जी ने कहा कि गढ़ आया, परन्तु दो सिंह चला गया।

२ सितम्बर को विजय दिवस पर श्री समरेश सिंह ने मजदूरों को आह्वान किया कि जिस दिन श्री बी० पाण्डेय और महेश राम पुनः एच० ई० सी० से प्रवेश करेंगे उसी दिन मजदूरों का विजय पर्व होगा।

२३ सितम्बर को भारतीय मजदूर संघ के संस्थापक मान्यवर दत्तोपंत ठेंगड़ी जी का एच०ई० सी० के मजदूरों

द्वारा हवाई अड्डे पर ऐतिहासिक एवं भव्य स्वागत हुआ। मान्यवर ठेंगड़ी जी ने मजदूरों की विशाल सभा में भाषण करते हुए एच० ई० सी० के मजदूरों को ऐतिहासिक एकता एवं सफलता के लिए बधाई दी। साथ ही उन्होंने कहा कि अब मजदूरों की जिम्मेवारी है कि श्री बी० पाण्डेय एवं श्री महेश राम को नौकरी पर वापस करवा कर पूर्ण विजय हासिल करे साथ ही मजदूर अपनी लड़ाई तब तक लड़े जब तक मजदूर मालिक नहीं बन जाता है।

वस्तुत: एच० ई० सी० के मजदूरों की जीत कई अर्थों में सिद्ध हुई है। एक ओर सार्व निक प्रतिष्ठान के अध्यक्ष एस० आर० जैन की अदुर्दशिता, उनकी तानाशाही मनोवृत्ति तथा मजदूर विरोधी तथा मालिक परस्त अल्पमत इंटक युनियन का षडयंत्र का पर्दाफाश किया गया तथा दूसरी ओर मजदूरो के अनेक युनियनों की एकताबद्ध संघर्ष-शक्ति, स्वरूप सामने आया। इसका श्रेय भारतीय मजदूर संघ के मजदूर हित, त्यागमय, जुझारू तथा बुद्धिमतापूर्ण कुशल नेतृत्व का है।

*

Bihar Sheet And Flat Products

Manufacturers of :

STEEL TUBES, G. I. PIPE FITTINGS & STEEL PROCESSORS

Office : 31-B, Circuit House Area

Jamshedpur-831 001, Bihar, India

B. S. T. No. JR 505 (R)
C. S. T. No. JR 351 (C)

Phone : Office & Works : 87171
Residence : 3488

(पृ० 28 का शेषांश)

पुनरावलोकन, मूल्यांकन तथा भ्रान्ति निवारण की व्यवस्था आदि रहती है।

सामुहिक समझौते की भाषा सरल तथा स्पष्ट होनी चाहिये। भ्रामक, बहुअर्थी तथा पेचीदगियों से बचना चाहिए।

सामुहिक समझौते की धारायें विधि सफल होनी चाहिए।

सामुहिक सौदेबाजी की शर्तें —

सामुहिक सौदेबाजी का विषय—वे मांगें होती हैं, जिनके विषय में निर्णय सामुहिक विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप लिया गया है।

★ कोई भी सामुहिक समझौता प्रतिष्ठान के व्यापक हितों, प्रभावी कानून, राष्ट्रीय औद्योगिक नीति एवं सार्वजनिक तथा राष्ट्रीय नीतियों या हितों के विरुद्ध नहीं होनी चाहिए।

★ सामुहिक समझौते की सफलता के लिए आवश्यक है कि दोनों पक्ष पूरी ईमानदारी एवं निष्ठा से इसका पूर्ण पालन करें। अपने-अपने पक्ष में समय-समय पर इसकी प्रगति की पूरी जानकारी देते रहें। किसी भी भ्रम, शंका अथवा मतभिन्नता की अवस्था में तुरन्त परस्पर बातचीत द्वारा उसका निराकरण करें।

सामुहिक सौदेबाजी का सुफल—

सामुहिक समझौतों द्वारा श्रमिकों एवं प्रबन्धकों में परस्पर विश्वास बढ़ता है। संघ-प्रबन्ध सम्बन्ध मधुर होते हैं, औद्योगिक शांति रहती है तथा संस्थान में स्थायित्व आता है। इससे उच्च उत्पादकता के साथ अधिकतम उत्पादन होता है, संस्थान की प्रगति होती है। परिणामस्वरूप संस्थान, श्रमिक, प्रबन्धक तथा समाज सभी को लाभ होता है।

किसी भी देश की समृद्धि, सुरक्षा एवं स्थायित्व उसकी औद्योगिक प्रगति पर ही निर्भर करता है। औद्योगिक प्रगति निर्भर करती है—औद्योगिक शांति पर। जिसका आधार है—परस्पर सहयोग विश्वास तथा एक-दूसरे के प्रति समझदारी पर निर्भरता तथा विकसित होते हुए मधुर यूनियन-प्रबन्ध सम्बन्ध।

सामुहिक सौदेबाजी का दर्शन—

औद्योगिक शान्ति, अच्छे मधुर यूनियन—प्रबन्ध सम्बन्धों पर ही निर्भर करती है। इसके लिए आवश्यक है उद्योग अथवा प्रतिष्ठान में उपस्थित या सम्भावित किसी भी औद्योगिक विवाद अथवा मतभिन्नता को आपस में मिल-बैठकर परस्पर विचार विमर्श, सहयोग तथा समझदारी से सुलझा लिया जाय, यही है सामूहिक एवं उसका दर्शन-शास्त्र।

सामुहिक समझौता श्रम संघ एवं प्रबन्ध वर्ग के मध्य किसी भी औद्योगिक विवाद मतभिन्नता अथवा सामुहिक हितों के सम्बन्ध में परस्पर सहमति से किया गया उसका निराकरण अथवा हल है।

प्रतिष्ठान में शान्ति तथा श्रमिकों प्रबन्धकों में मधुर सम्बन्ध स्थापित करने, बनाये रखने और विकसित करने का एकमात्र तरीका यही है कि सभी वर्तमान अथवा संभावित विवादों या मतभिन्नताओं का समाधान दोनों पक्षों द्वारा परस्पर सहयोग, समझदारी तथा सद्भावना के साथ द्वि-पक्षीय सामुहिक समझौतों के माध्यम द्वारा किया जाय।

सामुहिक समझौतों द्वारा दोनों पक्षों में अनिश्चितता तथा अविश्वास की भावना कम होकर परस्पर विश्वास, सद्भाव तथा निष्ठा की वृद्धि होती है। इससे प्रतिष्ठान में स्थायित्व आता है तथा विकास की गति तीव्र होती है।

सामुहिक निर्णय के अनुसार सामुहिक समझौते के मध्य कभी-कभी मांगों के औचित्य के विषय में जन जागरण की आवश्यकता होती है, जब कभी सामुहिक समझौते में अवरोध उत्पन्न हो।

अतः उद्योग अथवा प्रतिष्ठान शांतिपूर्ण वातावरण में अपनी पूरी क्षमता के साथ चलता रहे इसके लिए उसके समक्ष उपस्थित अथवा संभावित सभी विवादों के निराकरण हेतु विभिन्न द्विपक्षीय अर्थात् श्रमिकों एवं प्रबन्ध वर्ग के मध्य परस्पर सामुहिक समझौता होना आवश्यक है।

निश्चित ही द्विपक्षीय समझौते का स्थान कोई तीसरे पक्ष द्वारा किया गया समझौता नहीं ले सकता। औद्योगिक सम्बन्धों के क्षेत्र में यथार्थ में सामुहिक सौदेबाजी का कोई विकल्प नहीं है।●